देश-विदेश

पुस्तिका : नौ

किसका एजेण्डा?

अमरीकी रणनीतिक स्वार्थ, भारत और श्रीलंकाई युद्ध अपराध

अनुवाद : दिनेश पोसवाल

मूल अंग्रेजी लेख रिसर्च यूनिट ऑफ पोलिटिकल इकोनोमी, इंडिया (रूपे इंडिया) 13 मार्च 2013 को प्रकाशित।

देश-विदेश पुस्तिका-9
जनवरी - 2014

**किसका एजेण्डा? अमरीकी रणनीतिक स्वार्थ,
भारत और श्रीलंकाई युद्ध अपराध**

सम्पादक
उमा रमण

अनुवाद : दिनेश पोसवाल

सहयोग राशि
10 रुपये

सम्पर्क सूत्र
देश विदेश
502/10, एस-1, साँई कॉम्पलेक्स
ब्लॉक-डी, गली नं. - 1
अशोक नगर, शाहदरा,
दिल्ली - 110093

मुद्रक
प्रोग्रेसिव प्रिंटर्स
ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया
जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-95

उमा रमण द्वारा एस-1 साँई कॉम्पलेक्स, 502/10 अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली - 110093 से प्रकाशित

किसका एजेण्डा?
अमरीकी रणनीतिक स्वार्थ, भारत और श्रीलंकाई युद्ध अपराध

किसी भी राजनीतिक प्रश्न को देश-दुनिया के राजनीतिक अर्थशास्त्र से पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता। यही बात "मानवाधिकारों" के मामले में भी सही है- लोगों के जीवन में इस खास घटना का वास्तव में क्या महत्त्व है, यह समझने के क्रम में, हमें यह देखना होगा कि कौन और किस दृष्टिकोण से ये प्रश्न उठा रहा है, और विश्व व्यवस्था में उसकी जगह कहाँ है।

अमरीका ने मार्च 2013 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में श्रीलंका के खिलाफ एक प्रस्ताव का मसौदा पेश किया। ब्रिटेन के चैनल 4 का एक वृत्तचित्र *(नो वार जोन : द किलिंग फील्ड्स ऑफ श्रीलंका)* संयुक्तराष्ट्र मानवाधिकार परिषद में दिखाया जाना है। यह वृत्तचित्र इसी चौनल के दो पुराने वृत्तचित्रों की अगली कड़ी है। पहला वृत्तचित्र, जिसका शीर्षक *श्रीलंकाज किलिंग फील्ड्स* (जून 2011) है और जिसमें युद्ध अपराधों के बेहद भयावह दृश्य दिखाये गये हैं, उसे विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन में दिखाया गया था। दूसरे वृत्तचित्र, *किलिंग फील्ड्स : वार क्राइम्स अनपनिश्ड* (मार्च 2012) में व्यवस्थित ढंग से श्रीलंका की सरकार के युद्ध अपराधों के सबूतों को पेश किया गया है। 2 फरवरी को नयी दिल्ली में इस नवीनतम फिल्म का अग्रिम प्रदर्शन आयोजित किया गया। फिल्म के निर्देशक के शब्दों में, "फिल्म में दिखाये गये नये सबूत निश्चित तौर पर न सिर्फ श्रीलंका के बारे में भावी प्रस्ताव और जवाबदेही को लेकर भारत सरकार पर दबाव बनायेंगे, बल्कि यह भी सुनिश्चित करेंगे कि उस प्रस्ताव की शब्दावली सख्त हो, और यह भी कि वह श्रीलंका में बेलगाम हिंसा को खत्म करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय कार्यवाही की असरदार योजना तैयार करे।"[1]

जब हम यह लिख रहे हैं, तभी यह सूचना मिली है कि मार्च 2013 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में श्रीलंका के खिलाफ अमरीका-प्रायोजित भावी प्रस्ताव के पक्ष में भारत के वोट देने की पूरी सम्भावना है, जैसा कि उसने 2012 में भी किया था।

भारत में इस वृत्तचित्र के एक रहस्योद्घाटन ने खास तौर पर बड़े पैमाने पर ध्यान आकर्षित किया है- लिट्टे के प्रमुख वेलुपिल्लई प्रभाकरण के पुत्र बालाचंद्रन की तस्वीरें,

जिसमें वह श्रीलंका की सेना की हिरासत में जिन्दा और सकुशल है। उसके ठीक बाद उस लड़के की कुछ घंटे बाद की तस्वीर दिखायी गयी है, जिसमें अपनी छाती पर पाँच गोलियाँ खाकर वह मृत पड़ा है। यह इस बात का सबूत है कि उसे हिरासत में कत्ल कर दिया गया। ये तस्वीरें 2009 की अकथनीय भयावहता की यादों को फिर से ताजा कर देती हैं। इन भयावहताओं की यह जानकारी खास होते हुए भी नयी नहीं है : जब ये घटनाएँ हो रही थी तब दुनिया के पास इनके घटित होने के पर्याप्त सबूत थे।

मिडिया ने इस धारणा को बढ़ावा दिया है कि भारत सरकार खास तौर पर अपनी तमिल जनता की भावनाओं के चलते भी अमरीका-प्रायोजित प्रस्ताव के पक्ष में वोट डालने के लिये मजबूर है। निश्चय ही यह सच है कि फिलहाल तमिलनाडु की प्रमुख संसदीय पार्टियाँ इस प्रस्ताव के पक्ष में अपना समर्थन दिखाने के लिए एक दूसरे से होड़ कर रही हैं। बालाचंद्रन के कत्ल की तुलना नाजी जर्मनी में यहूदियों के साथ हुए कत्लेआम से करते हुए, तमिलनाडु की मुख्यमंत्री जे. जयललिता, ने माँग की है कि भारत सरकार को अमरीका और समान सोच वाले दूसरे देशों से विचार-विमर्श करना चाहिये और श्रीलंका के खिलाफ संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव का मसौदा तैयार करना चाहिए और उसके खिलाफ आर्थिक प्रतिबंध लगाने चाहिए। अपनी तरफ से उन्होंने जुलाई 2013 में चेन्नई में होने वाली बीसवीं एशियाई एथलेटिक प्रतियोगिता को यह कहते हुए रद्द कर दिया है कि उनके राज्य में श्रीलंका के खिलाड़ियों के लिए कोई जगह नहीं है। उनके प्रतिद्वंदी, डीएमके के अध्यक्ष एम. करुणानिधि भी इस मामले में उनके साथ थे- उन्हें इस बात से बड़ा कष्ट पहुँचा कि जब पश्चिमी देश संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में श्रीलंका के खिलाफ अमरीका-प्रायोजित प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये तैयार हैं, तब भी भारत ने इस मुद्दे पर अपने पक्ष की घोषणा नहीं की है। इस पक्ष के समर्थन में उन खेमों से भी समर्थन मिला जिसकी उम्मीद नहीं थी- भारत की कम्युनिस्ट पार्टी के नेता डी. राजा और दिल्ली उच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश और मानवाधिकारों के मशहूर समर्थक राजेन्द्र सच्चर ने माँग की कि भारत संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद के सत्र में श्रीलंका के खिलाफ वोट दे। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) की तमिलनाडु इकाई ने भी माँग की कि भारत अमरीका-प्रायोजित प्रस्ताव का समर्थन करे।

दूसरी तरफ राजपक्षे प्रशासन इस मामले से जुड़े अपने मंसूबों को पूरा करने के लिये प्रयासरत हैं। श्रीलंका के राष्ट्रपति महिंद्रा राजपक्षे, ने श्रीलंका के स्वतंत्रता दिवस (4 फरवरी) के अवसर पर राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में अपने देश के तमिलों के भविष्य के लिये अपने दृष्टिकोण का खाका पेश किया। "इस देश के लिये यह व्यावहारिक नहीं है कि यहाँ जातीयता के आधार पर अलग-अलग प्रशासन हों।" सहज भाषा में कहें, तो इसका मतलब यह है कि तमिल-बहुल इलाकों में तमिल अल्पसंख्यकों के लिये किसी

भी प्रकार की राजनैतिक स्वायत्ता का उपभोग करने की कोई गुंजाइश नहीं है। निश्चय ही देश के उत्तर और पूर्व में उन पुराने तमिल-नियंत्रित इलाकों में अभी भी सेना के कैम्प स्थापित हैं, जहाँ लगभग- 270,000 "फिर से बसाये गये" तमिल लोग श्रीलंकाई सेना की कड़ी निगरानी में रहते हैं, और इस तरह की ख़बरें है कि श्रीलंका की सरकार इस इलाके में सिंहली बस्तियाँ बसाने की योजना पर काम कर रही है, जो अपने कब्जे वाले वेस्ट बैंक में बस्तियाँ बसाने की इजरायली नीति से किसी भी तरह अलग नहीं है। राजपक्षे के हालिया भाषण के जवाब में करुणानिधि ने भारत सरकार से "कम से कम अब जाग जाने" और राजपक्षे के "असली रंग और मकसद" को समझने का आह्वान किया; करुणानिधि ने कहा कि "उनके शासन के दौरान लाखों तमिलों का कत्लेआम किया गया; बहुत से लोग अपनी जमीन से उजड़ गये और वे विभिन्न देशों में शरणार्थियों और अनाथों की तरह जीवन जीने के लिए मजबूर कर दिये गये...। उसने उनकी आजीविका को तबाह कर दिया, उत्तर और पूर्व में तमिलों की जमीनें, घर, और फैक्ट्रियाँ हथिया ली गयीं और उन्हें उनके लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया...। सारी दुनिया उन्हें एक अन्तरराष्ट्रीय युद्ध अपराधी की तरह देखती है।"[2]

इसमें शक की कोई गुंजाइश नहीं है कि श्रीलंका की सेना ने बड़े पैमाने पर युद्ध अपराधों को अंजाम दिया और उन्होंने ऐसा राजपक्षे के दिशानिर्देश और उनके संरक्षण में किया। यह उन्हें युद्ध अपराधी बनाता है, जिसके चलते वे दुनियाभर के लोगों के तिरस्कार और श्रीलंका के लोगों द्वारा दंड के अधिकारी हैं। फिर भी, ये युद्ध अपराध सिर्फ हाल ही में प्रकाश में नहीं आये हैं और न ही 2012 में, जब संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद ने श्रीलंका के खिलाफ अपना पहला प्रस्ताव पास किया था। कई सालों से इस बात के प्रमाण एकत्रित किये जा रहे हैं। 2009 में जब यह अभियान अपने चरम पर था, तब यदि उस वक्त दबाव बनाया जाता तो हजारों-लाखों जिंदगियों को इन युद्ध अपराधों से बचाया जा सकता था। संयुक्त राष्ट्र और अन्य कई देशों के शासक, विशेष तौर से अमरीका और भारत के शासक अच्छी तरह जानते थे कि उस समय क्या घटित हो रहा था। उन्होंने उस वक्त कोई कार्रवाई नहीं की। फिलहाल उनकी बनावटी चिंता के दूसरे ही मकसद हैं। अपनी तरफ से राजपक्षे खुद को ऐसे व्यक्ति के तौर पर पेश करते हैं जो पश्चिम के क्रोध को झेलने की कीमत पर भी निर्भयतापूर्वक श्रीलंका के हितों की सुरक्षा कर रहे हैं। हालाँकि, उनका साम्राज्यवाद-विरोध उतना की बनावटी है जितना श्रीलंका में मानवाधिकारों के प्रति साम्राज्यवादी शक्तियों की चिंता।

2006 में बदलता शक्ति संतुलन

ठीक इस समय जब लिट्टे काफी हद तक कमजोर हो गया था, तब श्रीलंका सरकार ने बड़े पैमाने पर अपनी सशस्त्र सेनाओं का विस्तार करना शुरु कर दिया। 2005 और 2008 के बीच श्रीलंका की सेना का बजट 40 प्रतिशत तक बढ़ गया, और सेना का आकार 70 प्रतिशत तक बढ़ गया।[3] अमरीका के एक करीबी सहयोगी, इसराइल ने श्रीलंका की सशस्त्र सेनाओं को लड़ाकू विमानों और गश्ती विमानों की आपूर्ति की।[4] भारत ने गश्ती नौकाओं और रडारों की आपूर्ति की;[5] इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि भारतीय नौसेना की दक्षिणी कमान ने लिट्टे को हथियारों की आपूर्ति रोकने में (जिसकी समुद्र के रास्ते से तस्करी की जाती थी) और लिट्टे के नौसैनिक जहाजों की आवाजाही को अवरुद्ध करने में श्रीलंकाई नौसेना की मदद की।[6] पाकिस्तान ने गोलाबारूद और हैण्डग्रेनेड की आपूर्ति की। चीन ने वाहन, बंदूकें, हल्के हथियार और बड़े पैमाने पर गोलाबारूद की आपूर्ति की; उसने कुछ विमान और एक राडार की भी आपूर्ति की।[7] (2007 में चीन ने श्रीलंका को दी जाने वाली आर्थिक सहायता को तेजी से बढ़ाकर 1 बिलियन डॉलर तक कर दिया और श्रीलंका के सबसे बड़े मददगार जापान को भी मात दे दिया।) विदेशी सैन्य प्रशिक्षण ने, जिसमें अमरीका भी शामिल रहा, सेना की क्षमताओं को बेहतर बनाया। विदेशी मामलों की अमेरिकी सीनेट परिषद की 2009 की एक रिपोर्ट के अनुसार--

श्रीलंका द्वारा अमरीकी लड़ाकू विमानों को अपने इलाके में उड़ान भरने और उतरने की व्यापक इजाजत देना जारी है और वह अमेरिकी जहाजों को नियमित रूप से बंदरगाहों का इस्तेमाल करने की इजाजत देता है। कांग्रेस-सम्बन्धी शोध सेवाओं के अनुसार, अमरीकी सैन्य प्रशिक्षण और सुरक्षा सहायता कार्यक्रम ने श्रीलंकाई नौसेना को बुनियादी आपूर्ति, समुद्री चौकसी और निषेधात्मक उपकरण उपलब्ध कराये और सेना के मानवीय प्रयासों और संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों के लिये संचार और गतिशीलता को बेहतर बनाने वाले उपकरण उपलब्ध कराये। 2007 में, अमरीका और श्रीलंका ने अधिग्रहण एवं अन्योन्य-सैनिक सहमति पर हस्ताक्षर किये, जिसने सैन्य आदान-प्रदान के पहले से बेहतर ढांचे का निर्माण किया।[8]

एक्सेस एंड क्रास सर्विसिंग एग्रीमेंट (एसीएसए) ने अमेरिकी सैन्य जहाजों और हवाईजहाजों के जरिये श्रीलंका की सेना को सुविधायें और ईंधन पहुँचाने में सहायता की। 2007 में, अमरीका ने लिट्टे की नौसेना को पराजित करने के लिये श्रीलंका की नौसेना को जटिल रडार उपकरण उपलब्ध कराये।[9] संक्षेप में कहें तो, श्रीलंका में शक्ति संतुलन को बदलने में कई शक्तियों ने बेहद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी-- लिट्टे को सैन्य दृष्टि

से अवरुद्ध और कमजोर किया, श्रीलंका की सरकार को मजबूत किया और इस तरह उन्होंने श्रीलंका की सरकार के आक्रमण को प्रोत्साहित किया। इन सभी शक्तियों के हाथ खून से रंगे हैं।

जुलाई 2006 में लिट्टे (उस वक्त देश के उत्तर और पूर्व में वास्तव में जिनकी सरकार थी) के साथ युद्धविराम की स्थिति होने के बावजूद, श्रीलंका की सरकार ने पहले पूरब के खिलाफ और उसके बाद उत्तर के खिलाफ एक बड़ा हमला बोल दिया। जल्दी ही संयुक्त राष्ट्र और गैर सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) द्वारा निरंतर इस तरह के आरोप लगने वाली खबरें आने लगी कि श्रीलंका की सशस्त्र सेनाओं और उसके सशस्त्र सहयोगी, "करुणा" ग्रुप के द्वारा जुल्म ढाये जा रहे थे।[10] इसके बाद लिट्टे के तमिल सहयोगियों का अपहरण, उत्पीड़न, और गैरकानूनी तौर पर हत्या शुरू हुई, लिट्टे के कब्जे वाले इलाकों में गोलाबारी और हवाई बमबारी की गयी और उत्तर में जमीन और समुद्र की रास्ते से होने वाली नागरिक आपूर्ति को अवरुद्ध कर दिया गया। सैकड़ों तमिलों को कोलम्बो से निर्वासित करके उत्तर और पूरब के युद्ध-क्षेत्रों में धकेल दिया गया। इस पूरे समय के दौरान, अमरीकी सरकार ने साफ तौर पर श्रीलंका की सरकार के प्रति अपने समर्थन की एक बार फिर पुष्टि की। एक साल के अंदर ही श्रीलंका की सशस्त्र सेनाओं ने पूर्व पर फिर से कब्जा कर लिया और वहां सैन्य प्रशासन थोप दिया। नवम्बर 2007 में, लक्ष्य बनाकर लिट्टे के प्रमुख मध्यस्थ, एस. पी. तमिलचेल्वन और कई अन्य वरिष्ठ लिट्टे नेताओं को कत्ल कर दिया गया। इस वक्त तक संयुक्त राष्ट्र के पास पूरब की परिस्थितियों के बारे में पर्याप्त प्रमाण थे, जिसमें बड़े पैमाने पर नागरिकों के विस्थापन और उन पर गोलाबारी किये जाने के सबूत भी शामिल थे।

संयुक्त राष्ट्र और अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार ग्रुपों ने श्रीलंका की सशस्त्र सेनाओं पर सेना-समर्थक करुणा ग्रुप के लिये बच्चों की जबरन भर्ती करने का भी इल्जाम लगाया था।[12]

वान्नी पर हमला

2007 में सरकार ने वान्नी में अपना सैन्य अभियान शुरू किया। यह ऐसा आखिरी इलाका था, जो उस वक्त लिट्टे के नियंत्रण में था। (5 जून 2007 को, कोलम्बो में अमरीकी दूतावास से लीक हुए संदेश से कुछ हद तक इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि श्रीलंका की सरकार, अमरीका और भारत के बीच किस हद तक समन्वय था, उसमें यह सूचना दी गयी है कि भारतीय नौसेना ने अमरीकी द्वारा उपलब्ध कराये गये तटवर्ती रडार को देश के दक्षिण में हस्तान्तरित करने की प्रस्तावित माँग

को वापस ले लिया।)[13]

सितम्बर 2008 में, जब संघर्ष अपने अंतिम दौर में था, तब श्रीलंका की सरकार ने आधिकारिक तौर से संयुक्त राष्ट्र को सूचित किया कि वह अब वान्नी में उसके कर्मचारियों की सुरक्षा की गारंटी नहीं कर सकती। तीन सप्ताह के अंदर, संयुक्त राष्ट्र ने अपने सारे अन्तरराष्ट्रीय कर्मचारियों को वहाँ से निकाल लिया और इस तरह वान्नी में संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से होने वाली सभी कार्यवाहियों को प्रभावी रूप से समाप्त कर दिया। जब संयुक्तराष्ट्र वहाँ से जाने के लिये तैयार था, तब वान्नी के लोगों ने संयुक्त राष्ट्र के कर्मचारियों के पास जाकर इस तरह की दलीलें देते हुए उनसे रुकने की प्रार्थना की- "कुछ परिवार अंतरराष्ट्रीय संगठनों की उपस्थिति के चलते और इस विश्वास के साथ किलीनोच्ची कस्बे में आये हैं कि उनके वहाँ रहने से उन्हें किसी न किसी प्रकार की शारारिक सुरक्षा हासिल होगी"; "यहाँ ऐसी चिंता है कि जिस क्षण भी मानवीय संगठन यहाँ से चले जायेंगे, सरकार किलीनोच्ची कस्बे पर बमबारी शुरू कर देगी और नागरिकों की शारारिक सुरक्षा को खतरा बहुत बढ़ जायेगा," ".... संयुक्त राष्ट्र की अनुपस्थिति का नतीजा होगा कि कोई भी घटनाओं का गवाह बनने के लिये (बचा) नहीं होगा...।"[14]

इन सभी फरियादों का कोई असर नहीं पड़ा।

अक्टूबर 2008 में, श्रीलंका की सेना ने वान्नी पर अपना आखिरी हमला शुरू कर दिया। धीरे-धीरे लिट्टे को, लगभग 3,50,000 नागरिकों के साथ, उत्तरपूर्वी समुद्रतटीय इलाके में मुलईतिवु जिले की एक छोटी-सी पट्टी में धकेल दिया गया। जनवरी आते-आते लिट्टे की राजधानी किलीनोच्ची का पतन हो गया।

6 जनवरी 2009 में, कोलम्बो स्थित अमरीकी दूतावास ने एक वक्तव्य जारी करके किलीनोच्ची के पतन का स्वागत किया और एक ऐसे राजनीतिक समाधान की उम्मीद जतायी जो "तमिल, मुस्लिम और सिंहली समेत सभी श्रीलंकावासियों की आकांक्षाओं" का ध्यान रख सके। ठीक इसी समय, अमरीका ने यह भी साफ किया कि "अमरीका इस बात का समर्थन नहीं करता कि श्रीलंका की सरकार लिट्टे के साथ समझौता करे, जो एक ऐसा ग्रुप है, जिसे 1997 से ही अमरीका ने एक विदेशी आतंकवादी संगठन घोषित किया हुआ है।"[15] शेष बचे हुए युद्ध के दौरान अमरीकी वक्तव्यों का सामान्य सुर, श्रीलंका प्रशासन से विनम्र शब्दों में अनुरोध के साथ-साथ, लिट्टे पर दोषारोपण करने का बना रहा-- नागरिकों पर गोलाबारी से बचे, फँसे हुए नागरिकों के लिये अन्तरराष्ट्रीय मानवीय पहुँच की अनुमति प्रदान करें और सभी श्रीलंकाई समुदायों को (लेकिन लिट्टे को नहीं) युद्ध के पश्चात सत्ता के बँटवारे में शामिल करें। यह रवैया एक नुमायाँ सच्चाई को धुँधला करने का काम करता था कि, लिट्टे के चरित्र और कार्यवाहियों से अलग, यह "संघर्ष" श्रीलंका को जीतने के लिये दो सेनाओं के बीच *युद्ध* नहीं था, बल्कि यह लिट्टे को तबाह

करने और श्रीलंका के तमिलों की आकांक्षाओं की किसी भी संगठित अभिव्यक्ति को मिटा देने के लिये श्रीलंकाई प्रशासन का पूरी तरह से एकतरफा हमला था। मई 2009 के बाद, एक संगठित ताकत के तौर पर लिट्टे का अस्तित्व समाप्त हो जाने के बाद से, पिछले लगभग चार सालों से यह काफी हद तक निश्चित हो गया है।

इस तरह, 21 जनवरी 2009 को श्रीलंका की सेना ने इस पट्टी के आसपास के 32 वर्ग किमी को नागरिकों के लिये "सुरक्षित क्षेत्र" (या "गोलाबारी न किये जाने वाला क्षेत्र", एनएफजेड) घोषित कर दिया, जिसके फलस्वरूप आम नागरिक इस पट्टी में एकत्रित हो गये और श्रीलंकाई सेना ने इस "गोलाबारी न किये जाने वाला क्षेत्र" पर गहनता से गोलाबारी शुरू कर दी। 12 फरवरी को उन्होंने 10 वर्ग किमी के एक नये एनएफजेड की घोषणा की और अगले तीन महीने तक अपनी गोलाबारी को जमीन की इस छोटी-सी पट्टी पर केंद्रित कर दिया। विस्थापित लोगों के शिविर और अस्पताल तक निशानों में शामिल थे।

इस अवधि के दौरान, श्रीलंका की सरकार ने व्यवस्थित ढंग से वान्नी इलाके और विशेष तौर से एनएफजेड को, भोजन और दवाईयों की आपूर्ति से वंचित रखा। मार्च 2009 आते-आते भूख से होने वाली मौतों की खबरें आनी शुरू हो गयी। कुछ जगहों पर ऐसे लोगों द्वारा कराहते हुए खाना माँगने और रास्तों के किनारों पर पड़े होने की खबरें थी जो बमुश्किल हिल-डुल सकते थे। ऐसे मामलों की सूचनाएँ थी कि लोग जहरीले पौधों को खाने के चलते बेहोश होकर गिर पड़े। मार्च आते-आते बेहोशी की दवा दिये बिना ही अंगविच्छेदन जैसे आपातकालीन ऑपरेशन किये गये।[16]

इस संघर्ष के आखिरी हफ्तों में, मुल्लिवाईक्ल अस्पताल में डॉक्टरों ने मेडिकल आपूर्ति की कमी के चलते कसाइयों की छुरी और पानी मिलाये हुए निश्चेतकों के सहारे ऑपरेशन किये। चढ़ाने के लिये खून के अभाव में, कर्मचारियों ने मरीजों के शरीर से निकले खून को कपड़े से छानकर उसे ही उन मरीजों को चढ़ाया।[17] (डॉक्टरों और उनके चिकित्सकीय कर्मचारियों ने इन परिस्थितियों में काम करके असाधारण वीरता का प्रदर्शन किया, इसके बावजूद कि वे खुद भी लगातार होने वाली श्रीलंकाई बमबारी के निशाने पर थे।)

श्रीलंकाईयों ने व्यवस्थित ढंग से अन्तरराष्ट्रीय सहायताकर्मियों और पत्रकारों को इस इलाके से बाहर रखा, ताकि वे अपनी "खंडन करने की क्षमता" को बनाये रख सकें। फिर भी, अमरीकी दूतावास इस दौरान अनेकों स्रोतों से इन परिस्थितियों के बारे में विस्तृत सूचनाएँ एकत्रित करने में जुटा रहा; निश्चय ही, इनके अतिरिक्त, उपग्रहों से हासिल होने वाली तस्वीरों तक भी उसकी पहुँच थी।

संयुक्त राष्ट्र संघ, अमरीका और दूसरी ताकतों को हमले के वक्त उपलब्ध सबूत

इसके अलावा, जनवरी के अन्त में, बमबारी करके नागरिकों को क़त्ल किये जाने के अकाट्य सबूत संयुक्त राष्ट्र के आगे पेश किये गये, जब नागरिक सहायता रक्षा दल के साथ रहने को मजबूर किये गये संयुक्त राष्ट्र के दो अन्तरराष्ट्रीय कर्मचारियों ने कोलम्बो वापस लौटकर उन घटनाओं का आँखों देखा हाल और लिखित प्रमाण पेश किये जिनके बारे में दूसरे स्रोत पहले ही खबरें दे रहे थे। संयुक्त राष्ट्र स्टाफ के एक सदस्य ने 9 फरवरी की अभियान रिपोर्ट में कहा "विश्वसनीय, जोर हमारा है, प्रत्यक्ष सूचनाओं के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संस्थाओं द्वारा लगाये गये अनुमान, जिन्हें अब तक सार्वजनिक नहीं किया गया है, यह संकेत देते हैं कि कम से कम 5,000 नागरिक हताहत हुए हैं, जिनमें बहुत से छोटे बच्चे भी शामिल हैं...। इनमें कम से कम 1,000 मारे गये नागरिक और लगभग 3,000 घायल हुए लोग भी शामिल हैं जो सिर्फ 20 जनवरी से 5 फरवरी के दौरान हताहत हुए...। यूएन के आँकड़ों के अनुसार ज्यादातर घायलों के लिये सरकारी गोलाबारी जिम्मेदार है और जिसमें संयुक्त राष्ट्र परिसरों और अस्पतालों पर हुए हमले भी शामिल हैं।"[18]

जैसा कि चैनल 4 के वृत्तचित्र में दिखाया गया है (और जिसकी उस समय पहले ही सूचना दी जा चुकी थी), अस्थायी अस्पतालों पर की जाने वाली बमबारी बार-बार दोहरायी गयी और वह सुनियोजित थी। जब रेड क्रास ने श्रीलंका की सरकार को एक अस्पताल के भूमंडलीय अवस्थिति के चित्र उपलब्ध करवाये, तब वास्तव में उसने इन चित्रों का इस्तेमाल इन लक्ष्यों पर ज्यादा सटीक तरीके से बमबारी करने के लिये किया।

संयुक्त राष्ट्र के विशेषज्ञों के पैनल के अनुसार, "लगभग 6 फरवरी 2009 से ही, श्रीलंकाई सेना ने उस इलाके पर, जिसे दूसरा उड़ान रहित क्षेत्र बनाया गया था, वहाँ जमीन, समुद्र और हवा, हर तरफ से निरंतर बमबारी जारी रखी गयी। ऐसा अनुमान है कि इस छोटे से इलाके में लगभग 3,00,00 से 3,30,000 के बीच नागरिक थे। श्रीलंकाई सेना के हमले में हवाई बमबारी, लंबी दूरी तक मार करने वाली तोपें, कम दूरी तक मार करने वाली तोपें और एमबीआरएल, अनियंत्रित मिसाइल प्रणाली, साथ ही छोटे मोर्टार, आरपीजी रॉकेट चालित ग्रेनेड और छोटे गोलाबारी के हथियार शामिल थे...।"[19]

जैसा कि नवम्बर 2012 में यूएन के आंतरिक समीक्षा पैनल (आईआरपी) ने टिप्पणी की, "पूरे अंतिम चरण के दौरान, यूएन ने लिट्टे पर मानवाधिकारों और अन्तरराष्ट्रीय कानूनों के उल्लंघन का इलजाम लगाने वाले कई सार्वजनिक वक्तव्य दिये और रिपोर्ट जारी की और हजारों मरने वाले नागरिकों का जिक्र किया। लेकिन...।

अन्तरराष्ट्रीय कानूनों के उल्लंघन के लिये सरकार की जिम्मेदारी का स्पष्ट उल्लेख करने से उसने लगभग पूरी तरह परहेज किया।"[20]

अप्रैल के आखिरी दिनों में, यूनीटार के परिचालन उपग्रह प्रयोग कार्यक्रम (यूनोसेट) द्वारा वान्नी इलाके के उपग्रह द्वारा लिये गये चित्रों को सार्वजनिक किया गया, जिससे वान्नी इलाके में उस वक्त तक रह रहे लोगों की संख्या का ताजा अनुमान लगाना संभव हो सका और इस बात की पुष्टि हुई कि उस वक्त भी वहाँ भारी तोपों से गोलाबारी जारी थी। फिर भी, जैसाकि आईआरपी रिपोर्ट ने टिप्पणी की, संयुक्त राष्ट्र अधिकारियों ने इस सूचना के महत्त्व को कम करके बताना पसंद किया।[21] इसी बीच, उस इलाके में परिस्थितियाँ बदतर होती गयीं और वहाँ मरने वाले नागरिकों की लगातार बढ़ती संख्या की खबरें आ रही थी।

मई 2009 के शुरुआती दिनों में जब लिट्टे अपनी सम्पूर्ण हार की तरफ बढ़ रहा था, तब उसके कुछ सदस्यों ने आत्मसमर्पण को आसान बनाने में मदद करने के लिये वरिष्ठ संयुक्त राष्ट्र अधिकारियों से संपर्क किया। संयुक्त राष्ट्र महासचिव के प्रमुख अधिकारी, विजय नाम्बियार ने आत्मसमर्पण का प्रयक्षदर्शी बनने और सुरक्षित मार्ग की गारण्टी करने के लिए हवाई जहाज से संघर्षरत इलाके में जाने की सरकार से इजाजत माँगी। सरकार ने इंकार कर दिया।[22] 18 मई 2009 आते-आते ज्यादातर बचे हुए लिट्टे नेता मार दिये गये, जिनमें वे भी शामिल थे जिन्होंने 18 मई की सुबह बिना हथियारों के और सफेद झंडे के साथ सरकार के कब्जे वाले इलाके में प्रवेश किया था। चैनल 4 के वृत्तचित्र में इस बात के वीडियो सबूत हैं कि श्रीलंकाई सैनिकों ने निशस्त्र लिट्टे कैदियों (मर्दों और औरतों) को कत्ल कर दिया और यह कि उन्होंने कत्ल करने से पहले कई महिला लिट्टे सिपाहियों के साथ यौनाचार किया। हम हँसते हुए और घृणास्पद फब्तियाँ कसते हुए सिपाहियों को देखते हैं जो महिलाओं के नंगे शवों को ट्रकों में लाद रहे हैं। हकीकतन ये दृश्य श्रीलंकाई सैनिकों द्वारा खुद ही 'ट्राफी वीडियो" के तौर पर फिल्माये गये हैं।

अंतिम चरण में मरने वालों की संख्या

अमरीका और दूसरी साम्राज्यवादी ताकतों के पास उस वक्त के अंतिम संहार के पर्याप्त सबूत हैं जब यह सब घटित हो रहा था। *द टाइम्स*, लन्दन की एक जाँच-पड़ताल जिसे 29 मई 2009 को प्रकाशित किया गया, इस बात का खुलासा करती है कि आसमान से ली गयी तस्वीरें, आधिकारिक दस्तावेज, गवाहों के बयान और विशेषज्ञों की गवाहियाँ इस बात के स्पष्ट सबूत हैं कि इस युद्ध के अंतिम चरण में श्रीलंकाई सेना की बमबारी

के चलते 20,000 से ज्यादा नागरिक मारे गये। ("इससे कहीं ज्यादा", जैसा कि *द टाइम्स* एक संयुक्त राष्ट्र स्रोत को उद्धृत करते हुए कहता है)। ऐसा अनुमान है कि अप्रैल के अन्त से 19 मई के बीच बमबारी और गोलाबारी से प्रतिदिन औसतन 1,000 नागरिक कत्ल कर दिये गये। संयुक्त राष्ट्र के पास उपलब्ध उपग्रह से ली गयी तस्वीरे जो प्रेस को गुप्त तरीके जारी की गयीं, वे चिकित्सीय सुविधाओं पर बमबारी के प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।[23]

संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञों के एक पैनल ने यह घोषित किया कि "कई विश्वसनीय सूत्रों ने यह अनुमान लगाया है कि वहाँ कम से कम 40,000 नागरिक मौतें हुयी हैं।" आंतरिक समीक्षा पैनल की रिपोर्ट दूसरे स्रोतों से हासिल विश्वसनीय सूचनाओं को उद्धृत करते हुए यह संकेत देती है कि वान्नी इलाके में 70,000 नागरिक लापता हैं। 2007 और 2010 के बीच श्रीलंका के उत्तरी इलाके में, गाँव दर गाँव लिये गये विश्व बैंक के जनसांख्यिक आँकडें भी यह संकेत देते हैं कि 100,000 से ज्यादा लोग लापता हैं।[26]

नजरबंदी शिविरों के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ का वरदहस्त

संघर्ष के आखिरी महीनों और उसके बाद के आखिरी हफ्तों के दौरान, संघर्षरत इलाके से बाहर आने वाले नागरिक गंभीर रूप से कुपोषित, सदमे के शिकार, बुरी तरह से थके हुए, और अक्सर गंभीर रूप से घायल थे। सुरक्षा दल हर किसी की लिट्टे का सदस्य/समर्थक होने की जाँच करते और उन्होंने 280,000 लोगों को सेना-संचालित अवरुद्ध नजरबंदी शिविरों में कैद रखा- जिनका सरकार "कल्याणकारी गाँवों" के तौर पर उल्लेख करती। शिविरों में, आन्तरिक विस्थापितों की फिर से जाँच की जाती और सेना द्वारा उन लोगों को फिर से "शरणार्थी" शिविरों में कैद कर लिया जाता जिन पर लिट्टे से जुड़े होने का शक होता। चैनल 4 ने इन शिविरों के भयावह हालात की रिपोर्ट दी-- "शव कई दिनों तक पड़े रहते; खाने के लिये मची भगदड़ में बच्चे कुचल जाते; महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न; लोगों का गायब हो जाना।"[27] (इसके तुरंत बाद ही चैनल 4 की टीम को देश से बाहर निकाल दिया गया।) हालाँकि उन्हें शिविरों तक पहुँचने की इजाजत नहीं दी गयी, फिर भी, संयुक्त राष्ट्र ने उनकी आलोचना करने के बजाय उनका समर्थन करने का विकल्प चुना।

इस हत्याकांड की जगह का खून अभी सूखा भी नहीं था जब संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव बान की-मून ने उन वरिष्ठ सलाहकारों की सलाह को रद्द करते हुए 22-23 मई को श्रीलंका की यात्रा की, जिन्होंने आगाह किया था कि उनकी यात्रा को सरकार के विजय समारोह में भागीदारी के तौर पर गलत समझा जा सकता है। इस यात्रा की तैयारी के तौर पर, संयुक्त राष्ट्र संघ अधिकारियों ने बान के प्रमुख सलाहकार, विजय नाम्बियार,

को सूचना दी थी कि उनके अनुमान से नागरिक मौतों की संख्या 20,000 से ज्यादा थी, परन्तु बान ने इस आँकड़ों पर एक सावधान चुप्पी साधे रखने का विकल्प चुना।[28] उन्होंने हवाई जहाज से निकृष्ट कत्लेआम की जगह का दौरा किया, और सबसे बड़े नजरबंदी शिविर का दौरा किया, जहाँ 220,000 लोग रह रहे थे। बान की यह यात्रा, जो संघर्ष के समाप्त होने के पश्चात देश में पहली प्रमुख अन्तरराष्ट्रीय हस्ती द्वारा की गयी यात्रा थी, राजपक्षे प्रशासन के प्रचार की जीत थी। जब वह बचे हुए लोगों की "पीड़ा" का अस्पष्ट रूप से जिक्र कर रहे थे, तब बान ने जोर देकर कहा- "लंबे संघर्ष का दौर खत्म हो चुका है। अब मरहम लगाने का समय है.... सभी श्रीलंकावासियों को एक न्यायसंगत और स्थायी शांति के लिये एक होना है। हमें ऐसा अवसर हासिल करने में मदद करनी चाहिये।... हालाँकि सरकार अपनी तरफ से पूरे प्रयास कर रही है, फिर भी उसके पास संसाधनों की कमी है। जिस चीज की जरूरत है और जो उपलब्ध है उसके बीच में भारी अंतर है।" हालाँकि उन्होंने संयुक्त राष्ट्र और दूसरे अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थाओं से "शिविरों में तुरंत और अबाधित पहुँच बनाने" का आह्वान किया।[29] लेकिन श्रीलंका की सरकार ने इस अपील पर ध्यान नहीं दिया; और संयुक्त राष्ट्र महासचिव ने भी बात को टाल दिया।

अमरीका : आलोचना की शोरगुल और वास्तविक चिंताएँ

अपनी तरफ से, अमरीका ने अब अपने रवैये को बदल लिया है। जैसे-जैसे संघर्ष अपने अंतिम चरण में पहुँचा उसने, नागरिकों की सुरक्षा की माँग करते हुए और उन तक अन्तरराष्ट्रीय पहुँच का आह्वान करते हुए, उत्तरोत्तर आलोचनात्मक शोरगुल शुरू कर दिया। इस मुद्दे पर ओबामा ने अपना पहला वक्तव्य 14 मई 2009 को जारी किया, जिसमें उन्होंने घायल नागरिकों के प्रति चिन्ता व्यक्त की और श्रीलंका से ऐसी शान्ति बहाल करने का आह्वान किया जो "उसके सभी नागरिकों के लिये सम्मान पर आधारित हो।"[30] श्रीलंका में अमेरिकी राजदूत ने सत्ता में भागेदारी के लिये "साहसी कार्रवाइयों" और "श्रीलंका के सभी समुदायों के लिये आशा, सम्मान और गरिमा से भरपूर भविष्य के आश्वासन" की माँग की।"[31]

फिर भी, बच्चा-बच्चा जानता है, कि जब अमरीका इस तरह के नतीजों को रोकने या पूरा करने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ होता है तो वह मात्र ऐसी डाँवाडोल अपील करके ही नहीं रुकता। वह हस्तक्षेप करता है, जैसे वह युगोस्लाविया, अफगानिस्तान, इराक, यमन, लीबिया, मध्य अफ्रीकी गणतंत्र और दूसरी जगहों में अनेकों तरीकों से कर रहा है। जहाँ वह अपनी सेनाएँ न भेजने का निर्णय लेता है, वहाँ वह अक्सर हथियार, प्रशिक्षण, और

विरोधी ताकतों को संचालन सहायता प्रदान करता है, और प्रतिबन्ध जैसे अनेकों दबावों का इस्तेमाल करता है। जब रूस और चीन ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में एक प्रस्ताव को रोक दिया जो सीरिया की सरकार की भर्त्सना करता था, तब अमरीका ने सीरिया की सरकार पर दबाव डालने के लिये और सीरिया के विरोधियों का समर्थन करने के लिये "सीरिया के मित्रों" के नाम से एक अन्तरराष्ट्रीय ग्रुप का गठन किया। सुरक्षा परिषद में इसी प्रकार रूस और चीन के समर्थन के अभाव ने अमरीका को ईरान के ऊपर उसके नाभकीय कार्यक्रम के बहाने एकतरफा प्रतिबन्ध थोपने से नहीं रोका। प्रसंगवश यह ध्यान देने लायक होगा कि श्रीलंका के राष्ट्रपति का भाई, रक्षा सचिव गोटाबाया राजपक्षे, अभी भी, एक अमेरिकी नागरिक बना हुआ है; दूसरा भाई, राष्ट्रपति का मुख्य सलाहकार, बासिल राजपक्षे, अमरीकी ग्रीन कार्ड धारक बना हुआ है। (विशेषतौर से, गोटाबाया राजपक्षे का युद्ध अपराधों से सीधा सन्बम्ध है - जैसे वरिष्ठ सैन्य अधिकारियों की गवाही के आधार पर लिट्टे के निहत्थे कैदियों को फाँसी दे देना, इन युद्ध अपराधों में सेना प्रमुख, सरथ फोंसेका, भी शामिल हैं।)

इस प्रकार अमरीका ने श्रीलंकाई युद्ध अपराधों के बारे में अपनी चिंता को ज्यादा आग्रही तरीके से तब व्यक्त करना शुरू किया जब कत्लेआम खत्म हो गया और लिट्टे को नेस्तनाबूद कर दिया गया। उसकी असल चिंता का मानवाधिकारों से बहुत कम लेना-देना है। 2005 से, विशेषतौर से राजपक्षे के राष्ट्रपति काल में, श्रीलंका प्रशासन और चीन के बीच आपसी सम्बन्ध घनिष्ठ होते जा रहे हैं। विदेशी मामलों पर सीनेट समिति की 2009 की एक रिपोर्ट (जिसकी अध्यक्षता वर्तमान अमरीकी राज्य सचिव, जॉन केरी ने की) में टिप्पणी की गयी है कि-

> श्रीलंका की सरकार कहती है कि अमरीकी रुख और सैन्य प्रतिबंधों ने उसे चीन, बर्मा, ईरान, और लीबिया के साथ सम्बन्ध निर्माण का रास्ता दिखाया। विज्ञान और तकनीकी मंत्री और सर्वदलीय प्रतिनिधित्व समिति के सभापति तीसा वितारना ने समिति स्टाफ को बताया, हम अमरीका के आभारी हैं कि उसने हमें चीन के साथ घनिष्ठता की ओर आगे बढ़ाया। वितारना के अनुसार, राष्ट्रपति राजपक्षे दूसरे देशों से संपर्क बनाने के लिये मजबूर थे क्योंकि पश्चिम ने लिट्टे के खिलाफ युद्ध को खत्म करने में श्रीलंका की सहायता करने से इंकार कर दिया था। *इन जोड़-घटावों को यदि रोका नहीं गया, तो हिंद महासागर में दीर्घकालिक अमरीकी सामरिक हितों के लिये खतरा हैं।*[32]

हथियार मुहैया करवाने के अतिरिक्त, चीन ने आवश्यक आर्थिक मदद भी प्रदान की और वह कई बड़ी ढाँचागत परियोजनाओं का भी निर्माण कर रहा है। जिसमे सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हम्बनटोटा कस्बे में एक विशाल बंदरगाह परिसर और हवाई अड्डे का

निर्माण है, जहाँ से राजपक्षे आते हैं। चीन ने देश के सबसे बड़े रेल और सड़क परियोजना के सौदे को भी हासिल कर लिया है। जिसके परिणामस्वरूप, खबरों के अनुसार इस वक्त श्रीलंका में लगभग 10,000 से 16,000 चीनी इंजीनियर, व्यापारी, और तकनीकी विशेषज्ञ काम कर रहे हैं। श्रीलंका की चीन के यूनान प्रांत के साथ सीधे हवाई संपर्क शुरू करने की भी योजना है।[33]

चीन श्रीलंका में जिन ढाँचागत परियोजनाओं का निर्माण कर रहा है वे पूरी तरह से सैन्य नहीं बल्कि वाणिज्यिक प्रतीत होती हैं। चीन और श्रीलंका के बीच सैन्य और सामरिक सम्बन्धों में कोई वास्तविक प्रगति होती नहीं दिखती। फिर भी, भारतीय और अमरीकी टीकाकार हम्बनटोटा का हवाला देते हुए उसे चीन की "मोतियों की माला" का एक मोती कहने से खुद को रोक नहीं पाया है।

अमरीका के सैन्य ठेकेदार बूज-एलन-हैमिल्टन ने पहली बार अमेरिकी रक्षा विभाग द्वारा अधिकृत 2005 की "एशिया में ऊर्जा का भविष्य" रिपोर्ट में, चीन की उभरती हुयी समुद्रीय रणनीति का विवरण देने के लिये "मोतियों की माला" मुहावरे का इस्तेमाल किया था। उसके बाद से अमेरिकी और भारतीय रणनीतिक विश्लेषकों के द्वारा खुले दिल से इस तरह इस मुहावरे का इस्तेमाल किया जा रहा है, जैसे चीन ने खुद अपनी रणनीति का वर्णन करने के लिये इस उक्ति का इस्तेमाल किया हो। "यहाँ तक कि उनके लिये भी जो चीन की "मोतियों की माला" रणनीति को ज्यादा तूल देना कहकर नकारते हैं," विदेशी मामलों की समिति कहती है, "श्रीलंका की सरकार पर चीन का बढ़ता हुआ प्रभाव चिंता का विषय है।" [34] एक अमेरिकी सैनिक युद्ध विद्यालय का अध्ययन स्पष्ट करता है-

> मोतियों की माला क्या है? 'मोतियों की माला' का हरेक मोती चीन के भूराजनीतिक प्रभाव और सैन्य उपस्थिति की एक कड़ी है। हाल ही में उन्नत सैन्य सुविधाओं से सम्पन्न, हैनान द्वीप एक 'मोती' है। वियतनाम के पूर्व में 300 समुद्री मील पर, परासल द्वीप समूह में स्थित, वूडी द्वीप में एक उन्नत हवाईपट्टी, एक 'मोती' है। बांग्लादेश के चितागोंग में एक मालवाहक नौवहन सुविधा एक 'मोती' है। सितवे, म्यांमार में एक गहरे पानी के बंदरगाह का निर्माण उसी तरह एक मोती है जैसे ग्वादर, पाकिस्तान में नौसैनिक अड्डे का निर्माण।[35] बंदरगाह और हवाई अड्डों के निर्माण की ये परियोजनायें, राजनयिक सम्बन्ध और सेनाओं का आधुनिकीकरण चीन की 'मोतियों की माला" का सार हैं। "मोतियों" का विस्तार दक्षिणी चीनी समुद्र के समुद्रतटवर्ती इलाकों, मलाक्का जलडमरूमध्य, हिंद महासागर में सभी ओर, और अरब सागर और फारस की खाड़ी के समुद्रतटीय इलाकों से लेकर चीन की मुख्यभूमि के समुद्रतट तक है। चीन सामरिक सम्बन्धों

का निर्माण कर रहा है और समुद्री रास्तों से संचार (एसएलओसी) की ऐसी अग्रिम उपस्थिति की क्षमता को विकसित कर रहा है जो चीन को मध्य पूर्व से जोड़ सके।[36]

"वैश्विक स्तर पर, चीन ऊर्जा-सुरक्षा के तरीकों को हासिल करने के लिये निरंतर इस तरह सक्रिय है कि यह ऊर्जा स्रोतों के मामले में अमरीका के साथ सीधी प्रतियोगिता की पूर्वसूचना है," अमरीकी कांग्रेस को 2005 की अमेरिकी-चीन आयोग की उसकी रिपोर्ट दावा करती है। "यह दोनों राष्ट्रों के बीच संघर्ष की संभावना पैदा कर रहा है।"[37] आयोग की 2012 की रिपोर्ट यह संकेत देती है कि किस तरह अमरीका चीन की इस कमजोरी का फायदा उठा सकता है- "चीन का नेतृत्व चीन की विदेशी ऊर्जा पर बढ़ती हुयी निर्भरता को एक रणनीतिक कमजोरी के तौर पर देखता है.... इसके अलावा चीन अपने ऊर्जा आयातों के लिये समुद्री व्यापारिक मार्गों पर निर्भर करता है जिसके जरिये चीन का ऊर्जा व्यापार मलाक्का जलडमरूमध्य और होरमुज जलसंधि जैसे बेहद महत्त्वपूर्ण सकीर्ण रास्तों तक खुल जाता है।"[38]

श्रीलंका का सामरिक महत्त्व उसकी अवस्थिति से पैदा होता है। काँग्रेस-सम्बन्धी रिसर्च सर्विसेज ने टिप्पणी की कि "इस इलाके में चीन की सक्रियता श्रीलंका जैसे दोस्तों को खोजने का प्रयास प्रतीत होती है जिससे वह अपने संचार के समुद्री मार्गों को होरमुज जलसंधि और हिंद महासागर के पश्चिमी क्षेत्र में मलाक्का जलडमरूमध्य के तंग रास्ते तक सुरक्षित रखकर अपने व्यापार को आगे बढ़ा सके और अपने ऊर्जा आयातों को सुरक्षित कर सके।"[39]

एशिया की धुरी

फ्रायड ने पहल करके अपने खुद के दोषों को दूसरों पर मढ़ देने की प्रक्रिया को "प्रक्षेपण" कहा है; और वास्तव में "मोतियों की माला" निबंध चीन पर अमरीका की खुद की रणनीति को प्रक्षेपित करने का एक कुशल कार्य है। एक दशक से भी ज्यादा समय से, जार्ज बुश और ओबामा प्रशासन उत्तरपूर्व एशिया से हिंद महासागर के ठीक इसी वृत्तखंड में अमरीकी सम्बन्धों और उपस्थिति को बढ़ाने का काम कर रहे हैं। हाल ही में, अमरीका पहले से ज्यादा मुखर हो गया है। नवम्बर 2011 में, ऑस्ट्रेलिया की संसद को सम्बोधित करते हुए, ओबामा ने टिप्पणी की कि उनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि "अमरीका इस क्षेत्र में एशिया-प्रशांत, और इसके भविष्य को आकार देने में एक बड़ी और दीर्घकालिक भूमिका निभाये।"[40] जून 2012 में, अमेरिकी रक्षा सचिव लेओन

पनेटा ने सिंगापुर में वार्षिक शांगरी-ला परिचर्चा के दौरान बताया कि अमरीका एशिया की ओर अपनी शक्तियों को "फिर से संतुलित" कर रहा है-- "2020 तक, नौसेना प्रशांत और अटलांटिक के बीच अपनी सेनाओं के लगभग 50-50 के अनुपात में बँटवारे का फिर से विन्यास करके इन महासागरों के बीच 60-40 का बंटवारा किया करेगी। इसमें इस इलाके में छह विमानवाहक पोत, और हमारे ज्यादातर युद्धपोत, विध्वंसक, लड़ाकू जहाज और पनडुब्बियाँ शामिल होंगे।"[41] जापान, दक्षिणी कोरिया, ऑस्ट्रेलिया और फिलिपींस जैसे अपने पुराने सहयोगियों के प्रस्थान बिंदु से आगे बढ़ते हुए, अमरीका उन सभी देशों को अपने साथ मिलाकर एक नये गठबंधन को आगे बढ़ा रहा है जिनका चीन के साथ विवाद है।

उस समय की अमरीका की रक्षा सचिव हिलेरी क्लिंटन ने नवम्बर 2011 में एक लेख, "अमरीका की प्रशांत शताब्दी" में, "एशिया की धुरी" नीति की विस्तारपूर्वक व्याख्या की थी, (जो फॉरेन पोलिसी जर्नल में प्रकाशित हुआ)[42]--

जैसे-जैसे इराक में लड़ाई खत्म हो रही है और अमरीका ने अफगानिस्तान से अपनी सेनाओं को हटाना शुरू कर दिया है, तब अमरीका एक धुरी पर खड़ा है.... इस तरह अगले कुछ दशकों में अमरीकी प्रशासन के हस्तकौशल का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यभार एशिया-प्रशांत क्षेत्र में अपने काफी हद तक बढ़े हुए निवेश कूटनीतिक, आर्थिक, सामरिक और दूसरे विभिन्न निवेशों को सुरक्षित करना होगा.... *एशिया-प्रशांत वैश्विक राजनीति का एक प्रमुख संचालक बन गया है। भारतीय उपमहाद्वीप से अमरीका के पश्चिमी तट तक फैला हुआ,* यह क्षेत्र दो महासागरों-- प्रशांत और हिंद महासागर- तक फैला हुआ है जो नौपरिवहन और रणनीति द्वारा निरंतर आपस में जुड़े हुए हैं.... (जोर हमारा है)

दुनिया भर में अमरीका की चौधराहट को पूर्ववत बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है, जिसके लिये, उनके अनुसार, यह क्षेत्र लालायित है--

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अटलांटिक के दोनों ओर बनी संस्थाओं और सम्बन्धों के व्यापक और टिकाऊ नेटवर्क के निर्माण की हमारी वचनबद्धता ने कई गुणा नतीजे दिये हैं और अभी भी निरंतर उसके परिणाम मिल रहे हैं...। अमरीका के लिये वह समय आ गया है कि वह एक प्रशांत शक्ति के तौर पर भी इसी प्रकार का निवेश करे...। *एशिया की प्रगति और गतिशीलता का उपयोग करना अमरीका के आर्थिक और सामरिक हितों के लिये प्रमुख है और यह* राष्ट्रपति ओबामा की *मुख्य प्राथमिकता है...।*

यह इलाका हमारे नेतृत्व और हमारे व्यापार के लिये उत्सुक है- शायद आधुनिक इतिहास में किसी भी अन्य समय से ज्यादा। हम इस क्षेत्र में मजबूत सम्बन्धों के नेटवर्क वाली, कोई क्षेत्रीय महत्त्वकांक्षा न रखने वाली और सार्वजनिक

हित प्रदान करने का एक लंबा इतिहास रखने वाली, एकमात्र महाशक्ति हैं। हमारे सहयोगियों के साथ, हमारी क्षेत्रीय सुरक्षा को लेकर दशकों से एक आम सहमति है- एशिया के समुद्री रास्तों की पहरेदारी और स्थिरता को बनाये रखना- और बदले में इसने प्रगति की परिस्थितियों के निर्माण में मदद की है...। अमरीका के वैश्विक नेतृत्व की सुरक्षा और निरंतरता के हमारे संपूर्ण वैश्विक प्रयास में इस क्षेत्र को लेकर एक रणनीतिक बदलाव एकदम तर्कसंगत है।... (जोर हमारा है)

पनेटा ने जिस सैन्य बढ़त का वादा किया उसे एक आक्रामक कूटनीतिक अभियान के साथ-साथ चलना है-

यह क्षेत्रीय रणनीति किस तरह की होगी? शुरुआत के लिये, यह एक अनवरत प्रतिबद्धता की माँग करती है जिसे मैंने "पहले से लागू" कूटनीति कहा है। इसका मतलब है हमें एशिया-प्रशांत क्षेत्र के प्रत्येक देश और हर कोने में हमारे हर प्रकार के राजनयिक सहयोगियों को निरंतर भेजते रहना होगा जिसमें हमारे वरिष्ठ आधिकारी, हमारे विकास विशेषज्ञ, हमारी अंतर-एजेंसी टीम, और हमारे स्थायी सहयोगी शामिल हैं। हमारी रणनीति को एशिया में सर्वत्र होने वाले तेज और आकस्मिक बदलावों के साथ तालमेल बैठाने और जवाबदेही के लिये तैयार रहना होगा। फिलहाल हमारी चुनौती प्रशांत के आरपार साझेदारी और संस्थाओं का एक ऐसा जाल बुनने की है जो अमेरिकी हितों और मूल्यों के साथ उतना ही टिकाऊ और अनुरूप हो जितना कि अटलांटिक के आरपार निर्मित जाल है... । जापान, दक्षिणी कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, फिलीपींस और थाईलैंड के साथ हमारे संधि-गठबंधन एशिया-प्रशांत में हमारे सामरिक बदलाव का आधार हैं।

अब अमरीका हिंद महासागर में अपनी उपस्थिति को बढ़ाना चाहता है और इसे प्रशांत शक्तियों के साथ जोड़ना चाहता है--

पिछले दशक के दौरान एशिया की असाधारण आर्थिक प्रगति और भविष्य में निरंतर प्रगति की उसकी सम्भावनायें स्थिरता और सुरक्षा पर निर्भर हैं, लम्बे समय से जिसकी गारंटी अमेरिकी सेना करती रही है...। जब हम उत्तरपूर्वी एशिया और हिंद महासागर में अपनी उपस्थिति को बढ़ा रहे हैं तभी हम उत्तरपूर्व एशिया में अपने परंपरागत सहयोगियों के साथ अपने बुनियादी सम्बन्धों का आधुनिकीकरण कर रहे हैं और हमारी प्रतिबद्धता एकदम दृढ हैं। हम किस तरह हिंद महासागर और प्रशांत महासागर के बीच बढ़ते हुए संपर्क को क्रियाशील संकल्पना में तब्दील करेंगे, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका जवाब हमें तलाशना होगा, यदि हमें इस क्षेत्र में नयी चुनौतियों के साथ सामंजस्य बैठाना है। इस परिदृश्य में, एक ज्यादा व्यापक और फैली हुयी सैन्य उपस्थिति इस इलाके में बेहद महत्त्वपूर्ण लाभ प्रदान

करने वाली होगी। अमरीका मानवीय अभियानों को समर्थन करने के लिये बेहतर स्थिति में होगा; और इतना ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण होगा, ज्यादा सहयोगियों और साझेदारों के साथ काम करना जो क्षेत्रीय शांति और स्थिरता को कमजोर करने के प्रयासों और धमकियों के खिलाफ एक ज्यादा सुदृढ़ ढांचा प्रदान करेगा।

श्रीमती क्लिंटन चीन के साथ सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के बारे में हमेशा की तरह बात करती हैं, परन्तु स्पष्ट सवाल यह है कि- इस सैन्य-कूटनीतिक अभियान का लक्ष्य कौन है जो ठीक-ठीक चीन के समुद्री मार्गों का अनुकरण करता है? वह चेतावनी देती हैं कि "अमरीका और अन्तरराष्ट्रीय समुदाय सेना के आधुनिकीकरण और विस्तार के चीन के प्रयासों पर नजर रख रहा है, और हमने उसके इरादों के बारे में स्पष्टीकरण माँगा है...।" इसके विपरीत एक शक्ति के रूप में उभरने की भारत की आकांक्षाएँ अमरीका की नजरों में हितकारी हैं -

पिछले साल राष्ट्रपति ओबामा ने भारतीय संसद को बताया कि भारत और अमरीका के बीच सम्बन्ध 21वीं शताब्दी की उन *निर्धारक साझेदारियों में से एक* होंगे, जो समान मूल्यों और हितों पर आधारित हैं। अभी भी दोनों तरफ से कुछ बाधाओं को पार करना है और कुछ प्रश्नों के जवाब हासिल करने हैं, परन्तु अमरीका भारत के भविष्य पर सामरिक दाँव लगा रहा है जिसका मतलब है कि विश्व रंगमंच पर भारत की एक वृहत्तर भूमिका शान्ति और सुरक्षा को बढ़ायेगी. .. इसलिये ओबामा प्रशासन ने हमारे साथ द्विपक्षीय साझेदारी को विस्तृत किया है; भारत के 'पूरब की ओर देखो' प्रयासों का सक्रिय रूप से समर्थन किया है, जिसमें भारत और जापान के साथ नया त्रिपक्षीय वार्तालाप शामिल है; और एक आर्थिक रूप से ज्यादा एकीकृत और राजनैतिक रूप से स्थिर दक्षिण और मध्य एशिया के लिये नये दृष्टिकोण की रुपरेखा तैयार की है, जिसमें *भारत उस धुरी की सबसे महत्त्वपूर्ण कील है।* (जोर हमारा है)

एशिया को नियंत्रित करने के इस रणनीतिक अभियान में, "मानवाधिकारों" का मुद्दा एक महत्त्वपूर्ण हथियार है--

परन्तु हमारी सैन्य शक्ति और हमारी अर्थव्यवस्था के आकार से भी ज्यादा, हमारा सबसे शक्तिशाली साधन एक राष्ट्र के तौर पर हमारे मूल्यों की शक्ति है- विशेष तौर पर, लोकतंत्र और मानवाधिकारों के पक्ष में हमारा अडिग समर्थन। यह हमारे गहन राष्ट्रीय चरित्र को बयान करता है और यही हमारी विदेश नीति का मूल है, जिसमें एशिया-प्रशांत क्षेत्र में हमारा रणनीतिक बदलाव भी शामिल है।

जैसे-जैसे हम उन सहयोगियों के साथ अपने सम्बन्धों को मजबूत करते हैं जिनसे हम इन मुद्दों पर असहमत हैं, हम उनसे सुधारों को स्वीकार करने

का अनुरोध करते हैं जो शासन प्रणाली, मानवाधिकारों की सुरक्षा, और उन्नत राजनीतिक स्वतंत्रता को बेहतर बनाएँगे। उदाहरण के लिये, हमने विएतनाम के सामने स्पष्ट कर दिया है कि एक रणनीतिक साझेदारी को विकसित करने की हमारी महत्त्वकांक्षा के लिये यह जरूरी है कि वह मानवाधिकारों की सुरक्षा और उन्नत राजनैतिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने के लिये आगे कदम बढ़ाये। या बर्मा का उदाहरण लें, जहाँ हम मानवाधिकारों के उल्लंघन के लिए जवाबदेही तय करने के लिये प्रतिबद्ध हैं। हम पई ताव की घटनाओं तथा आंग सान सू की और सरकारी नेतृत्व के बीच आपसी मेलजोल बढ़ने पर नजदीकी नजर रख रहे हैं. हमने सरकार के सामने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह राजनैतिक कैदियों को रिहा करे, राजनैतिक स्वतंत्रता और मानवाधिकारों को आगे बढ़ाये और अतीत की अपनी नीतियों को छोड़ दे।

इस तरह की धुरी बनाना आसान नहीं है, परन्तु पिछले ढाई सालों में हमने इस मामले में अपना मार्ग प्रशस्त किया है और हम हमारे समय के सबसे महत्त्वपूर्ण कूटनीतिक प्रयासों को उनके अंजाम तक पहुँचाने के लिये प्रतिबद्ध हैं।

बर्मा को चीन के प्रभाव से अलग करने के लिये 'मानवधिकार' प्रश्न का इस्तेमाल किया गया

इस इलाके में अमरीका के द्वारा 'मानवाधिकारों' के इस्तेमाल का यह प्रारूप शायद बर्मा में हुई गतिविधियों का नतीजा है। बर्मा 1997 से चुनावी नतीजों के विरुद्ध निर्णय देने, राजनीतिक विरोधियों की गिरफ़्तारी और सैनिक शासन लागू करने के चलते अमेरिकी प्रतिबंधों की निगरानी में है। अमरीका और उसके सहयोगियों द्वारा लगाये गये ये प्रतिबंध बर्मा के सैन्य शासकों को चीन के साथ अपने सम्बन्धों को मजबूत करने की दिशा में ले गये, जो विदेशी निवेशक और आर्थिक मदद का ऐसा मुख्य स्रोत बना गया जिसने वहाँ कई ढाँचागत परियोजनाओं का निर्माण किया। इनमें विशेष तौर से महत्त्वपूर्ण हैं- दक्षिण में सितवे का चीन-निर्मित बंदरगाह और दक्षिणी चीन से तेल ले जाने वाली पाइपलाइन। इस तरह वह मलाक्का जलडमरूमध्य के तंग रास्ते से बच सका जहाँ से होकर चीन के जहाजों को गुजरना पड़ता और इस तरह चीन की तेल आपूर्ति को पहले से बेहतर सुरक्षा हासिल हुई। (पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत के ग्वादर में चीन-निर्मित बंदरगाह भी इसी मकसद के लिये है।) इस तरह बर्मा में चीन की सिर्फ ऐसी बड़ी आर्थिक परियोजनायें ही दाँव पर नहीं है जिनकी कुल कीमत अरबों डॉलर में है, बल्कि उसकी बेहद

महत्त्वपूर्ण रणनीति भी दाँव पर लगी है।

फिर भी, श्री लंका की तरह से बर्मा के साथ भी चीन के आर्थिक सम्बन्ध बेहद संकीर्ण ओर नाजुक थे। इन संबंधों में मुख्य रूप से बर्मा से कच्चे माल के निर्यात और चीन में निर्मित उत्पाद, अर्क निकाले वाली परियोजनायें और कुछ विशेष ढाँचागत योजनायें शामिल है जो चीन के आर्थिक हितों को पूरा करती हैं। (ये चीन की पूंजीवादी जरूरतों को दर्शाती हैं, और विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में उसका स्थान तय करती हैं।) चीनी व्यापार और सहायता बर्मा की अर्थव्यवस्था को एकतरफा और तीव्र संकट से सुरक्षित नहीं रख सकती थी। बर्मा के सैनिक शासक अमरीका के साथ सुलह करने का अवसर तलाश रहे थे। ओबामा प्रशासन ने भी अपनी "एशिया की धुरी" नीति के तहत सावधानी से बातचीत शुरू कर दी, इसमें शायद भारतीय सरकार ने भी एक भूमिका निभायी (जिसने बर्मा के साथ अपने संबंधों को बनाये रखा था)।

2008 में, सैनिक शासन ने एक पाखंडपूर्ण संविधान थोप दिया जो हकीकतन सेना की सत्ता को सुरक्षित करता था, जिसमें संसद की 440 सीटों में से 110 सेना के कार्यरत अधिकारियों के लिये आरक्षित थी; राष्ट्र प्रमुख के लिये सेना का अधिकारी होना जरूरी था, जो मंत्रियों और उच्चतम न्यायालय के जजों की नियुक्ति करता; सेना का कमांडर रक्षा मंत्री का चयन करता; इत्यादि। उसका एक अनुच्छेद अपराधियों को चुनाव लड़ने से रोकता, जो असल में सू की के नेतृत्व वाली नेशलन लीग फॉर डेमोक्रेसी (एनएलडी) के नेताओं को चुनाव लड़ने से रोक देता, जिसमें सू की खुद भी शामिल थी। एनएलडी ने 2010 में इस संविधान के तहत होने वाले चुनाव का बहिष्कार किया। हालाँकि तब तक थेन सीन, सेना के एक भूतपूर्व अधिकारी और 'निर्वाचित' राष्ट्रपति, ने अमरीका और सू की (अमरीका की कृपापात्र) के साथ चर्चा शुरू कर दी थी। बर्मा के खिलाफ प्रतिबंधों को समाप्त करने की एक शर्त के तौर पर, अमरीका ने माँग रखी कि उन प्रावधानों में संशोधन किया जाये जो एनएलडी को चुनावों में भाग लेने से रोक रहे थे; राजनैतिक कैदियों को रिहा किया जाये; और जातीय अल्पसंख्यकों के साथ संघर्ष को खत्म किया जाये। हालाँकि, मानवाधिकार के इस एजेंडे के पीछे, असली मकसद बर्मा को चीन की धुरी से दूर धकेलना था।

उसके बाद तेजी से होने वाली घटनाओं से यह एकदम स्पष्ट हो गया- 2011 में सू की और सैकड़ों दूसरे राजनैतिक कैदियों की रिहाई; सितम्बर 2011 में बर्मा के विदेश मंत्री की वाशिंगटन यात्रा; उत्तरी बर्मा में चीन के द्वारा वित्त पोषित म्यित्सोने बाँध परियोजना का निरस्त होना और दिसम्बर 2012 में हिलेरी क्लिंटन की बर्मा यात्रा जो किसी भी अमरीकी रक्षा सचिव की 50 सालों में पहली यात्रा थी। अप्रैल 2012 आते-आते यात्राओं पर लगी रोक और बर्मा सरकार पर प्रतिबंधों को ढीला कर दिया गया और क्लिंटन

ने थेन सेन और उसके सहकर्मियों की उनके "नेतृत्व और साहस" के लिये सराहना की। अमरीका ने बर्मा में बहुपक्षीय वित्तीय संस्थाओं की भागीदारी पर अपने ऐतराज को त्याग दिया, जिससे अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से सहायता की सम्भावना का मार्ग प्रशस्त हो गया; ब्रेटन वुड्स के इन जुड़वाओं ने तुरंत ही प्रचलित नवउदारवादी लाइन के आधार पर बर्मा की अर्थव्यवस्था के व्यापक रूपांतरण के लिये योजनायें बनानी शुरू कर दी। भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने रंगून की यात्रा की और भारतीय सहायता और ढाँचागत सुविधाओं के लिये एक सौदे पर हस्ताक्षर किये। अमरीकी सेना ने सैन्य सहयोग फिर से शुरू करने से सम्बन्धित गम्भीर वार्ता शुरू कर दी और सेंट्रल इंटेलिजेंस एजेंसी (सीआईए) के निदेशक, डेविड पेट्रायूस ने 2012 में बर्मा की यात्रा की प्रतिबद्धता जतायी। जून 2012 में अमरीका ने रंगून में राजदूत भेजकर सीधे राजनयिक संबंधों को बहाल कर दिया।

वह अनुच्छेद जो अपराधी ठहराये व्यक्तियों को चुनाव में भाग लेने से रोकता था, उसे रद्द कर दिया गया। एनएलडी ने 2008 के संविधान के प्रति अपनी आपत्तियों का त्याग कर दिया और 2012 के उपचुनावों में 46 में से 43 सीटें जीत ली। सितंबर 2012 में सू की ने अमरीका का एक बेहद व्यस्त दौरा किया, जहाँ वह लगभग सभी महत्त्वपूर्ण नेताओं से मिली, जिसमें ओबामा भी शामिल थे, और वहाँ उन्हें हर जगह लोकतंत्र और मानवाधिकारों के एक 'आइकन' के तौर पर पेश किया गया।

निश्चय ही, अब सू की ने थेन सेन और सेना की प्रशंसा करते हुए, बर्मा प्रशासन के काम आने वाले अब तक के शायद सबसे बेहतरीन विज्ञापन के तौर पर काम किया। "मैं सेना को बेहद पसंद करती हूँ," उन्होंने स्वीकार किया। "लोग मेरे द्वारा ऐसा कहा जाना पसंद नहीं करते। ऐसे बहुत से लोग हैं जिन्होंने मुझे सेना की 'पोस्टर गर्ल' कहकर मेरी आलोचना की है, परन्तु मैं मानती हूँ कि सच्चाई यह है कि मैं सेना की बहुत बड़ी प्रशंसक हूँ क्योंकि मैं हमेशा ही उसे अपने पिता की सेना के तौर पर देखती हूँ।"[43]

सशस्त्र सेनाओं के प्रति उनके इस मालिकाना लगाव से बर्मा के समाज के सभी तबको की सहमति नहीं है। जून 2011 में, जब प्रशासन "विश्व समुदाय" (यानि अमरीका) के आगोश में वापस लौट रहा था, तब बर्मा की सेना ने काचिन क्षेत्र (जिसकी सीमायें चीन से मिलती हैं) के खिलाफ आक्रमण शुरू कर दिया था जो काचिन इंडिपेंडेंस आर्मी (केआईए) के नियन्त्रण में था। हाल ही के महीनों में, यह सैनिक आक्रमण काचिन क्षेत्र पर लड़ाकू विमानों के द्वारा बमबारी और भारी हथियारों द्वारा गोलाबारी का रूप अख्तियार कर चुका है। फरवरी 2013 में बर्मा में संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिवेदक ने "ऐसे काचिन व्यक्तियों के साथ जिन पर काचिन इंडिपेंडेंस आर्मी से सम्बन्धित होने का इल्जाम हो, उनके साथ सेना द्वारा पूछताछ के दौरान टॉर्चर किये जाने और उनकी मनमाने

ढंग से गिरफ्तारी किये जाने की लगातार जारी कार्यप्रणाली" के प्रति चिंता व्यक्त की। "इसके अतिरिक्त, बड़े पैमाने पर सेना की लगातार उपस्थिति जो जवाबदेही प्रक्रिया की पहुँच से बाहर बनी हुयी है, जिसका अभिप्राय है कि वहाँ, काचिन प्रांत में, मानवाधिकारों का गम्भीर उल्लघंन जारी है"।[44] ह्यूमन राइट वाच (एचआरडब्ल्यू) ने दावा किया कि बर्मा की सेना ने "गाँवों पर हमला किया और न्यायेत्तर कत्लेआम, जबरन मजदूरी, यातना, बलात्कार और लूट को अंजाम दिया है। काचिन राज्य में इस साल आंतरिक रूप से विस्थापित लोगों की संख्या लगभग 90,000 पहुँच गयी है। सरकार ने केआईए-नियन्त्रित इलाके में विस्थापित लोगों के लिये मानवीय पहुँच बनाने के अनुरोधों को व्यापक रूप से अस्वीकार कर दिया है।"[45]

जिस समय काचिन के लोगों के ऊपर हमला तेज हो रहा था, उसी समय एक दूसरे इलाके में हिंसा भड़क उठी। जून 2012 में, बर्मा के रखीने प्रांत में अराकान और रोहिंग्या लोगों के बीच झड़पें शुरू हो गयी। रोहिंग्या एक मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदाय है और बर्मा के मूलनिवासी होने के बावजूद उनके साथ नागरिकों जैसा बरताव नहीं किया जाता, बल्कि बौद्ध बहुसंख्यक उन्हें 'बांग्लादेशी' कहते हैं। 10 जून से रखीने प्रांत सेना के अधीन आ गया। सुरक्षा दलों ने रोहिंग्या के खिलाफ खुलेआम पक्षपाती तरीके से कार्यवाही की उदाहरण के लिये, जहाँ वे रोहिंग्या लोगों के घरों की बड़े पैमाने पर आगजनी रोकने में असफल रहे, वहीं उन्होंने ऐसे रोहिंग्या लोगों पर गोलियाँ बरसायी जो आग बुझाने का प्रयास कर रहे थे। हिंसा में सैकड़ों रोहिंग्या लोगों के मरने की खबर है; इससे बहुत ज्यादा लोग शरणार्थी हो गये हैं।[46] संयुक्त राष्ट्र ने अनुमान लगाया कि 2012 में लगभग 13,000 रोहिंग्या समुदाय को तस्करों की जर्जर नावों में भागने के लिये मजबूर होना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप सैकड़ों रास्ते में ही मर गये; इसके बावजूद 2013 में हजारों और लोग भी इस समुद्री रास्ते से भागने का प्रयास कर चुके हैं।[47]

एचआरडब्ल्यू के अनुसार, "राष्ट्रीय सुरक्षा बल प्रारम्भ से ही दोनों में से एक भी समुदाय को हिंसा से बचाने में असफल रहे और उसके बाद उन्होंने लगातार क़त्ल करने, मारने और सामूहिक गिरफ्तारी के लिये रोहिंग्यास को निशाना बनाया।" 1,10,000 से ज्यादा विस्थापित रोहिंग्यास शरणार्थी शिविरों में रह रहे हैं जिनकी संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिवेदक ने जेलों से तुलना की है। एचआरडब्ल्यू कहता है कि रोहिंग्यास के लिये मानवीय सहायता पहुँचाने में बाधक सरकारी प्रतिबंधों ने "बहुतों को भोजन, समुचित आश्रय और चिकित्सीय देखभाल की भीषण कमी के हवाले कर दिया है। अधिकारियों ने रोहिंग्या के लिये संकट से पहले के लगभग सभी मानवीय सहायता कार्यक्रमों को भी अनिश्चित काल के लिये रोक दिया है, जिससे वे हजारों-हजार लोग प्रभावित हो रहे हैं जो अपने घरों में रुके हुए हैं।"[48] अक्टूबर 2012 में राष्ट्रीय सुरक्षा बलों के द्वारा दुर्व्यवहार

करने का एक नया दौर शुरू हुआ; इसलिये जब नवम्बर 2012 में बर्मा यात्रा करने वाले ओबामा पहले कार्यरत राष्ट्रपति बने तो वह रोहिंग्या समस्या को टाल नहीं सके। फिर भी उन्होंने, बिना बर्मा के सुरक्षा बलों की आलोचना किये, खुद को दोनों समुदायों के द्वारा हिंसा खत्म करने का आह्वान करने तक ही सीमित रखा- ठीक उसी समय उन्होंने लोकतांत्रिक सुधारों के लिये बर्मा के "असाधारण सफर" की जमकर प्रशंसा की।[49]

सू की की खामोशी और उनके वक्तव्य

प्रारम्भ में सू की ने काचिन प्रश्न पर पूरी खामोशी बनाये रखी। *इंडिपेंडेंट* के अनुसार, "जब शनिवार को हका या के उसके पहाड़ी दुर्ग में बमबारी करके केआईए को तबाह किया जा रहा था, तब मिस सू की हवाई में एक टीवी पर प्रसारित हो रहे मध्यान्ह भोजन समारोह में व्याख्यान दे रही थी, जहाँ उन्होंने देश के दूसरे सबसे बड़े राज्य में होने वाले युद्ध का कोई जिक्र नहीं किया। काचिन पीस नेटवर्क, जो विस्थापित लोगों के लिये सहायता प्रबंधन का काम करता है उसके संस्थापक खोन जा ने कहा कि 'उनका ध्यान हमारे लोगों की पीड़ा के बजाय, पुरुस्कार हासिल करने और राष्ट्रपति बनने में है' 'काचिन समुदाय के लोग पिछले एक साल से ज्यादा समय से उनसे मिलने की गुहार लगा रहे हैं, पर उन्होंने लगातार इंकार ही किया है।'"[50]

आखिरकार जब काचिन संगठनों ने बैंकाक में सू की के मुँह पर पट्टी लगायी हुयी तस्वीर के साथ प्रदर्शन किया, तब 17 जनवरी 2013 को सू की ने काचिन प्रांत में युद्धविराम और बातचीत के द्वारा इस प्रश्न के समाधान की माँग करके एक विलम्बित प्रतिक्रिया दी।[51] उन्होंने यह माँग 1947 की उस घटना की वर्षगाँठ के दिन, जब उनके पिता ने बर्मा के जातीय अल्पसंख्यकों के बहुमत के साथ उस पंगलोंग समझौते पर हस्ताक्षर किये थे जिसने संघीय राज्य के ढांचे को स्थापित किया था। यह ध्यान देने योग्य है कि 2008 का संविधान जिसके तहत सू की ने 2012 के उपचुनाव में हिस्सा लिया, वह, 1947 के पंगलोंग समझौते का सीधा उल्लंघन करता है।[52]

रोहिंग्या समुदाय ने हिंसा का प्रकोप शुरू होने से कुछ दिन पहले जून 2012 में ही, सू की से हस्तक्षेप करने की अपील की थी; पर उन्होंने खामोश रहने का विकल्प चुना। आखिरकार जब उन्होंने रोहिंग्या के मामले में अपनी खामोशी को तोड़ा तब उनके वक्तव्य के निहितार्थ पहले से ज्यादा भयावह थे। एक भारतीय समाचार चौनल एनडीटीवी के एक सवाल के जवाब में, उन्होंने रोहिंग्या समुदाय के ऊपर बराबर दोष मढ़ने का विकल्प चुनारू "यह नहीं भूलना चाहिये कि दोनों तरफ से हिंसा हुई है." उसके बाद उन्होंने रोहिंग्या लोगों की नागरिकता पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया और पूरी समस्या की जिम्मेदारी "गैरकानूनी

अप्रवास" पर थोप दी, इस अंदाज में कि नरेंद्र मोदी भी उन पर गर्व महसूस करते।

यह एक बड़ी अन्तरराष्ट्रीय त्रासदी है और इसलिये मैं यह लगातार कहती हूँ कि नागरिकता कानूनों के बारे में सरकार की एक नीति होनी चाहिए। हमारा एक नागरिकता कानून है और वे सभी जो इस कानून के तहत नागरिकता प्राप्त करने के अधिकारी हैं उन्हें नागरिकता मिलनी चाहिए। हमने यह बड़े स्पष्ट तौर से कहा है।

अब इस बात को लेकर झगड़ा है कि क्या लोग इस कानून के अंतर्गत सच्चे नागरिक हैं या वे बाद में अप्रवासियों की तरह बांग्लादेश से आये हैं. इस पूरी समस्या का एक बेहद दिलचस्प और कुछ हद तक तकलीफदेह पहलू यह है कि ज्यादातर लोग सोचते प्रतीत होते है कि यह सिर्फ एक देश का मामला है, दरअसल इस मामले में दो देश शामिल हैं और जिसमें बर्मा एक तरफ है, और निश्चय ही सरहद की सुरक्षा दोनों देशों की जिम्मेदारी है। और फिलहाल ऐसा लगता है कि हर कोई सोचता है कि सरहद पूरी तरह से बर्मा की जिम्मेदारी है।

एनडीटीवी : इसका बेहतर समाधान क्या है, इस गतिरोध से बाहर आने का क्या रास्ता है?

आंग सान सू की : सबसे पहले उन्हें कानून-व्यवस्था के बारे में कुछ करना होगा। हमें हिंसा को फिर से भड़कने से रोकना होगा, जिसका मतलब है पर्याप्त सुरक्षा उपाय और उसके बाद मैं सोचती हूँ कि नागरिकता कानून की फिर से जाँच करनी होगी। और वे जो नागरिकता प्राप्त करने के हकदार है, उन्हें न सिर्फ नागरिकता दी जानी चाहिये बल्कि उन्हें नागरिकों के सभी अधिकार दिये जाने चाहिये। और उसके बाद मैं सोचती हूँ कि अप्रवास-सम्बन्धी मुद्दे की जाँच करनी चाहिए। अभी भी बड़े पैमाने पर सरहद से लगातार गैरकानूनी आवाजाही जारी है और इसे उन्हें किसी भी तरीके से रोकना होगा, नहीं तो इस समस्या का कोई अन्त नहीं होगा, क्योंकि बांग्लादेश कहेगा कि ये सभी लोग बर्मा से यहाँ आये हैं और बर्मा कहेगा कि ये सब लोग बांग्लादेश से यहाँ आये हैं। और किसी भी तरफ से प्रमाण कहाँ है?[53]

वास्तव में, जैसे कि शरणार्थियों पर संयुक्त राष्ट्र उच्चायोग ने रिपोर्ट दी है, सच्चाई इसके ठीक विपरीत है- बांग्लादेश के सरहदी इलाकों में लगभग 2,30,000 रोहिंग्या शरणार्थी हैं, जो पहले के दशकों में उत्पीड़न की लहर से बचने के लिये *बर्मा से भाग आये थे*।[54]

संक्षेप में, बर्मा की तरफ अमेरिकी नीति यह दर्शाती है तीसरी दुनिया के देशों को अपने रणनीतिक गठबंधनों में बदलाव लाने के लिए किस तरह प्रभुत्वशाली ताकतों, जैसे कि अमरीका, द्वारा मानवाधिकारों के वास्तविक प्रश्न का इस्तेमाल किया जा सकता है

(और उनकी अर्थव्यवस्था को अपनी लूट के लिए खुलवाया जा सकता है); जब एक बार यह हासिल कर लिया जाता है तब मानवाधिकारों की परिस्थितियाँ भले ही पहले से ज्यादा विकृत हो जायें, तब भी वे अमरीकी तिरस्कार के अधिकारी नहीं होते। जब हम अफगानिस्तान, इराक, लीबिया, इत्यादि में मानवाधिकारों को अमरीकी विदेश नीति के उपकरण के तौर पर इस्तेमाल किये जाने से पूरी तरह परिचित हैं, तब बर्मा इस बात का उदाहरण पेश करता है कि बिना 'शासन में बदलाव किये', केवल *'सरकार में फेरबदल'* के माध्यम से किस तरह अमरीका अपने मंसूबों को पूरा कर सकता है।

कत्लेआम के बाद

अब श्रीलंका के एक ज्यादा उलझे हुए मामले पर वापस आते हैं- जैसा कि हमने देखा, अमरीका (और उसका करीबी सहयोगी, इसराइल) ने भी राजपक्षे के हमले के दौरान काफी महत्त्वपूर्ण सहायता और प्रोत्साहन दिया था। युद्ध के आखिरी चरण के दौरान, अमरीका ने खुद को साधारण अपीलों तक सीमित रखा, परन्तु उसने ऐसी भाषा के इस्तेमाल से खुद को सावधानीपूर्वक बचाये रखा जो राजपक्षे के लिये एक साफ संकेत हो सकती थी।[55] *एक बार जब कत्लेआम खत्म हो गया,* तब कत्लेआम के सबूत श्रीलंका प्रशासन के सामरिक पुनर्निधारण में काफी काम के उपकरण साबित हो सकते हैं।

निश्चय ही, श्रीलंका में अमरीका का काम उतना आसान नहीं होगा जितना बर्मा में था। बर्मा के प्रशासन के पास जनता के समर्थन का अभाव था और वह लोकप्रिय उथलपुथल से आशंकित था; दूसरी तरह श्रीलंका के राजपक्षे के पास अभी भी सिंहली उग्र-राष्ट्रवादी भावुकता पर आधारित जनता का समर्थन हासिल है (हकीकतन, वह सिंहली हितों के रक्षक के तौर पर अपनी घरेलू छवि को चमकाने के लिये इस बाहरी दबाव का इस्तेमाल करते हैं)। इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण कारक यह है कि अमरीका के साथ श्रीलंका के आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्ध बर्मा के मुकाबले काफी ज्यादा व्यापक हैं।

अमरीका के श्रीलंका के साथ बरताव में फिलहाल भले ही "छड़ी" ज्यादा प्रकट हो, परन्तु उसे "गाजर" दिये जाने में भी ज्यादा देर नहीं है। विदेशी मामलों की सीनेट समिति, केरी जिसके अध्यक्ष हैं, ने 2009 में ही तमिल शरणार्थियों पर विशिष्ट फोकस बनाये जाने के खिलाफ चेतावनी दी थी-- "श्रीलंका राजनैतिक और आर्थिक रूप से पश्चिम से अलग हो गया है। यह रणनीतिक झुकाव इस क्षेत्र में अमेरिकी हितों के लिये गंभीर नतीजे देने वाला होगा...। श्रीलंका हिंद महासागर में एक बेहद महत्त्वपूर्ण समुद्री व्यापारिक मार्ग के मध्य में स्थित है जो यूरोप और मध्य पूर्व को चीन और शेष एशिया से जोड़ता है...। अमरीका श्रीलंका को 'खोने' का खतरा नहीं उठा सकता"। "सिर्फ अल्पावधि की मानवीय

चिंताओं" से संचालित होने के बजाय, अमरीकी नीति को "श्रीलंका के बारे में एक ज्यादा व्यापक और सुदृढ़ दृष्टिकोण अपनाना चाहिये जो श्रीलंका की नयी राजनीतिक और आर्थिक वास्तविकताओं और अमरीकी रणनीतिक हितों का निर्धारण कर सके।" यह रिपोर्ट, अन्य बातों के अलावा, यह प्रस्तावित करती है कि अमरीकी कांग्रेस को "अमरीकी सेना द्वारा श्रीलंका के सैनिक अधिकारियों के प्रशिक्षण को फिर से शुरू करने के लिये अधिकृत कर देना चाहिये जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि मानवाधिकार से सम्बन्धित चिंताएँ भविष्य के अभियानों के साथ समन्वित हो जायें और बेहद महत्त्वपूर्ण सम्बन्धों के निर्माण में मदद हो सके"।[56]

भारतीय शासकों के रुख में बदलाव का कारण तमिलों के प्रति संवेदना नहीं हैं

यह दावा कि भारत सरकार ने तमिल जनसंख्या के दबाव में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में श्रीलंका के खिलाफ वोट दिया, इसे तार्किक मानना कठिन है। 2009 में जिस वक्त कत्लेआम हो रहा था, तब युद्ध के अंतिम चरण में तमिलों के प्रति संवेदना ने लिट्टे की नौसेना के खिलाफ भारत सरकार को समुद्री सेना की तैनाती और अधिक बढ़ाने से नहीं रोका (हालाँकि यह इस शर्त पर किया गया कि कोलम्बो मई 2009 के आम चुनावों के खत्म होने तक इस बात का खुलासा नहीं करेगा)।[57]

तमिलनाडु की दोनों प्रमुख पार्टियों, डीएमके और एआईएडीएमके, को भी इस मामले में गंभीरता से नहीं लेना चाहिये। मई 2009 में डीएमके तमिलनाडु में सत्ता में थी और केन्द्र में सत्ताधारी यूपीए सरकार की सहयोगी थी; युद्ध के लिये यूपीए के समर्थन की जानकारी होने के बावजूद उसने गठबंधन से हाथ नहीं खींचा। यहाँ तक कि डीएमके के कार्यकर्ता भी अपने सुप्रीमो एम. करुणानिधि के युद्ध के खिलाफ आमरण अनशन से प्रभावित नहीं हुए होंगे, जो 28 अप्रैल 2009 की सुबह शुरू हुआ और उसी दिन दोपहर के भोजन से पहले ही समाप्त हो गया।

हकीकतन, एआईएडीएमके की नेता जयललिता की प्रतिक्रियाओं में उतार-चढ़ाव एक हद तक अमेरिकी नीति में बदलाव को दर्शाता है, हालाँकि उनकी प्रतिक्रियायें ज्यादा अतिरंजित और चरम हैं। वह लिट्टे के प्रति अपने खुले विरोध के लिये प्रसिद्ध हैं और उनका पहला रुख राजपक्षे के युद्ध के लिये खामोश समर्थन था। जनवरी 2009 में उन्होंने घोषणा की-- "आज युद्धविराम समय की माँग है। ऐसा कैसे किया जा सकता है? इसे हासिल करने का सिर्फ एक ही तरीका है कि लिट्टे हथियार डाल दे और आत्मसमर्पण कर दे।"[58] हालाँकि 10 मार्च आते-आते वह श्रीलंका के तमिलों की "देश के संविधान

के अंतर्गत आत्मनिर्णय वाले राज्य की माँग" के समर्थन में एक दिन (शाम 5 बजे तक) के उपवास पर बैठी और उन्होंने इस विध्वंस के प्रति करुणानिधि सरकार और केंद्र सरकार की उदासीनता की आलोचना की। 10 मई आते-आते जयललिता ने कहा- "तमिल ईलम ही तमिलों की पीड़ा का एकमात्र हल है। इस मामले में मेरी राय में कोई बदलाव नहीं है। मैं उसी तरह श्रीलंका में भारतीय सेना भेजना चाहूँगी जैसे स्वर्गीय प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने बांग्लादेश के निर्माण के लिये पूर्वी पाकिस्तान में भेजी थी"।[59] इस तरह सिर्फ चार महीनों के अंदर वह लिट्टे द्वारा श्रीलंका की सेना के सामने हथियार डाल देने से लेकर ईलम के निर्माण के लिये भारतीय सेना के द्वारा हथियार उठाने तक पहुँच गयी।

जून 2011 में हिलेरी क्लिंटन अपनी भारतीय यात्रा के दौरान जयललिता से मिली। अमरीकी विदेश विभाग के अनुसार, उन दोनों ने श्रीलंका के बारे में बातचीत की। बाद में अन्ना सेंट्रल लाइब्रेरी में व्याख्यान देते हुए, अमरीकी रक्षा सचिव ने स्पष्ट तौर से कहा कि "अमरीका और भारत इस क्षेत्र में लोकतान्त्रिक मूल्यों को बढ़ाने के लिये एक साथ मिलकर काम कर सकते हैं।" विशेष रूप से, उन्होंने बर्मा में होने वाले "सकारात्मक परिवर्तनों को आकार देने के लिये" भारतीय मदद की मांग की; "हम भारत को ना सिर्फ पूर्व की ओर देखने के लिये बल्कि पूर्व में कार्यवाही करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं।"

> हमारी भौगोलिक स्थिति के चलते अमरीका हमेशा से ही एक प्रशांत शक्ति रहा है और भारत जिसका हिंद महासागर से प्रशांत महासागर तक दोनों समुद्रों पर प्रभाव रहा है वह इन जलमार्गों पर एक प्रबंधक की तरह हमारे साथ है। क्या ये क्षेत्र रास्ते के नियमों का पालन करेगें? क्या ये ऐसी संस्थाओं का निर्माण करेंगे जो अंतरराष्ट्रीय नियमों को लागू कर सके? भारत अपनी "पूरब की ओर देखो" नीति से इन सवालों का जवाब दे सकता है। हम दोनों की तेजी से बदलते उस क्षेत्र के भविष्य को आकार देने में बेहद दिलचस्पी है जो इन दो समुद्री क्षेत्रों को जोड़ती है।

2011 से श्रीलंका पर अमरीका का दबाव बढ़ गया है और तभी से जयललिता ने श्रीलंका के युद्ध अपराधों के प्रश्न पर अपनी कर्कशता को बनाये रखा है और उनके पाखण्ड ने करुणानिधि को काफी पीछे छोड़ दिया है।

भारतीय सरकार दो विचारों के बीच संतुलन बना रही है जिनमें से एक का भी तमिलों की नियति से कोई लेना-देना नहीं है।

एक तरफ, वह इस इलाके में चीन के बढ़ते हुए प्रभाव से आशंकित है जिसे वह अपना प्रभाव क्षेत्र मानता है. जब 2007 की शुरुआत में, श्रीलंका ने चीन-निर्मित जेवाई-11 थ्रीडी रडार प्राप्त किये, तब भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार एमके नारायणन ने इस आधार पर इसका विरोध किया कि इसकी भारतीय हवाई क्षेत्र तक पहुँच होगीरू

उन्होंने यह सही मौका है कि श्रीलंका इस बात को समझे कि भारत इस क्षेत्र की एक बड़ी ताकत है और उसे हथियारों के लिये पाकिस्तान या चीन के पास जाने से परहेज करना चाहिये, क्योंकि हम अपनी विदेश नीति के ढाँचे के तहत उनकी मदद करने के लिये तैयार हैं।[61] इसका तात्पर्य था कि श्रीलंका हथियारों के लिये उनकी बजाय भारत के पास आये। इसी लीक पर चलते हुए भारत ने 2009 के संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में श्रीलंका प्रशासन के समर्थन में वोट दिया। दूसरी तरफ, ऐसा प्रतीत होता है कि अमरीका ने श्रीलंका में 'सरकार में फेरबदल' के काम को पूरा करने में सहयोग करने के बदले में भारतीय शासकों पर पर्याप्त दबाव डाला है और साथ ही पर्याप्त ईनाम भी देने का वादा कर लिया है। इसीलिये जहाँ 2009 में भारत ने संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में श्रीलंका के समर्थन में वोट दिया था वहीं 2012 में उसके खिलाफ वोट दिया।

इसलिये श्रीलंका में युद्ध अपराधियों को दंड देने की किसी भी ईमानदार माँग, उन सभी से पूरी तरह स्वतंत्र और अलग से उठनी चाहिये जो खुद कठघरे में खड़ा किये जाने के लायक हैं।

रिसर्च यूनिट ऑफ पोलिटिकल इकोनोमी, इंडिया (रूपे इंडिया) द्वारा - 13 मार्च 2013

टिप्पणी

1. http:èèwww.hindustantimes.comèworld-newsèSriLankaèPrabhakaran-sons-death-Sri-Lanka-dismisses-photosèArticle1-1013842.aspx
2. http:èèwww.thehindu.comètodays-paperètp-nationalètp-tamilnaduèwake-up-understand-motives-of-rajapaksa-karunanidhièarticle4387709.ece
3. "अंडरस्टैंडिंग श्रीलंका'स डिफीट ऑफ द तमिल टाइगर्स", नील ए. स्मिथ, *ज्वाइनट फोर्स क्वार्टरली,* सितंबर 2010, नेशनल डिफेंस युनिवर्सिटी, http:èèndupress.ndu.eduèlibèimagesèjfg-59èJFQ59_40-44_Smith.pdf
4. *आर्म्स ट्रेड विद श्रीलंका : ग्लोबल बिजनेस, लोकल कॉस्ट्स,* जोनास लिंडबर्ग, कैमिला ओरजेला, सिमोन वेजमेन, लिंडा एकरस्त्रोम, पृष्ठ 48, http:èèwww.svenskafreds.seèsitesèdefaultèfilesèarms-trade-with-sri-lanka_0.pdf
5. वही, पृष्ठ 47।
6. http:èèwww.telegraphindia.comè1090519èjspèfrontpageèstory_10988878.jsp
7. *आर्म्स ट्रेड विद श्रीलंका,* पृष्ठ 46-47।

8. http://www.gpo.gov/fdsys/pkg/CPRT-111SPRT53866/html/CPRT-111SPRT53866.htm
9. *आर्म्स ट्रेड विद श्रीलंका,* पृष्ठ 45।
10. *रिपोर्ट ऑफ द सेक्रेटरी-जनरलस इंटरनल रिव्यू पैनल ऑन यूनाईटेड नेशंन्स एक्शन इन श्रीलंका* (आगे इसकी जगह आईआरपी लिखा जायेगा), यूनाईटेड नेशंन्स 2012 पृष्ठ 41-42।
11. *आईआरपी,* पृष्ठ 42।
12. करुणा ग्रुप एबडक्टस चिल्ड्रन फॉर कॉम्बेट, 25/1/07, http://www.hrw.org/news/2007/01/23/sri-lanka-karuna-group-abducts-children-combat; और करुणा ग्रुप एंड लिट्टे कंटीन्यू एबडक्टिंग एंड रिक्रूटिंग चिल्ड्रन, ह्यूमन राइट्स वाच, 30/3/07, http://www.hrw.org/news/2007/03/27/sri-lanka-karuna-group-and-ltte-continue-abducting-and-recruiting-children
13. http://www.thehindu.com/news/the-india-cables/article1538187.ece
14. *आईआरपी,* पृष्ठ 50।
15. अमरीकी दूतावास का कोलम्बो प्रेस वक्तव्य, 6/1/09
http://srilanka.usembassy.gov/pr-6jan09.html
16. "श्रीलंका में हालिया संघर्ष के दौरान हुयी घटनाओं की कांग्रेस को रिपोर्ट", अमरीकी विदेश विभाग, 2009, पृष्ठ 55।
17. *श्रीलंकास किलिंग फील्ड्स* में एक गवाह की रिपोर्ट, चौनल 4, 2011
18. आईआरपी, पृष्ठ 64।
19. *रिपोर्ट ऑफ द सेक्रेटरी-जनरलस पैनल ऑफ एक्सपर्ट्स ऑन अकाउंटेबिलिटी इन इन श्रीलंका* (आगे से इसकी जगह पीओई लिखा जायेगा), यूनाईटेड नेशंन्स 2011, पृष्ठ 28।
20. *आईआरपी,* पृष्ठ 12।
21. *वही,* पृष्ठ 12-13।
22. *वही,* पृष्ठ 13।
23. *द टाइम्स* (लन्दन) की रपटों का *टाइम्स ऑफ इंडिया* में सार दिया गया था, 30/05/09 और 31/05/09।
24. *पीओई,* पृष्ठ 39-41।
25. *आईआरपी,* पृष्ठ 14; साथ ही देखें पृष्ठ 38।
26. "श्रीलंका युद्ध के बाद एक लाख तमिल लापता हैं," फ्रांसेस हैरिसन, *हफिंगटन पोस्ट,* 17/12/12।http://www.huffingtonpost.co.uk/frances-harrison/one-hundred-thousand-peop_b_2306136.html

27. "पत्रकार जिसने श्रीलंका में नजरबंदी शिविरों पर खबरें दी, उसने अपनी कहानी बतायी", *गार्जियन,* 10/05/09, http://www.guardian.co.uk/world/2009/may/10/channel-4-sri-lanka
28. *द टाइम्स* (लन्दन) की रपटों का *टाइम्स ऑफ इंडिया* में सार दिया गया था, 31/05/09
29. http://www.un.org/apps/news/story.asp?NewsID=30902&Cr=Sri#.US9oDTeOaYE
30. http://www.reuters.com/article/2009/05/14/us-srilanka-idUSN1343603620090514
31. http://www.state.gov/p/sca/rls/rmks/2009/123745.htm
32. http://www.gpo.gov/fdsys/pkg/CPRT-111SPRT53866/html/CPRT-111SPRT53866.htm
33. "'मोतियों की माला' का एक और मोती"? इंटरप्रैटिंग श्रीलंकास फोरेन पोलिसी रिआलाईनमेंट" सेर्गेई डी सिल्वा-रानासिंगे, *चाइना सिक्यूरिटी,* अंक 19, 2011, वर्ल्ड सिक्यूरिटी इंस्टीट्यूट, http://www.chinasecurity.us/index.php?option=com_content&view=article&id=492&Itemid=8
34. वही।
35. *ऐसा ही*; ग्वादर असल में एक वाणिज्यिक बंदरगाह है।
36. स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स : मीटिंग द चौलेन्ज ऑफ चाइनास राइसिंग पावर एक्रोस द एशियन लिटोरल", क्रिस्टोफर जे. पेहर्सन, 2006, स्ट्रेटजिक स्टडीज इंस्टीट्यूट (अमेरिका)। http://www.strategicstudiesinstitute.army.mil/pdffiles/pub721.pdf
37. *रिपोर्ट टू द कांग्रेस ऑफ द यू एस-चाइना इकोनॉमिक एंड सिक्यूरिटी रिव्यू कमीशन, 2005,* पृष्ठ 171, http://origin.www.uscc.gov/sites/default/files/annual_reports/2005-Report-to-Congress.pdf
38. *रिपोर्ट टू द कांग्रेस ऑफ द यू एस-चाइना इकोनॉमिक एंड सिक्यूरिटी रिव्यू कमीशन,* 2012, पृष्ठ 17, http://origin.www.uscc.gov/sites/default/files/annual_reports/2012-Report-to-Congress.pdf
39. http://www.gpo.gov/fdsys/pkg/CPRT-111SPRT53866/html/CPRT-111SPRT53866.htm esa उद्धृत
40. http://www.whitehouse.gov/the-press-office/2011/11/17/remarks-president-obama-australian-parliament
41. http://www.bbc.co.uk/news/world-us-canada-18305750
42. http://www.state.gov/secretary/rm/2011/10/175215.htm
43. http://www.telegraph.co.uk/culture/culturevideo/tvandradiovideo/9830059/Aung-San-Suu-Kyi-I-am-fond-of-Burmese-army.html
44. http://www.ohchr.org/EN/NewsEvents/Pages/DisplayNews.aspx?NewsID=13004

45. http://www.hrw.org/news/2012/11/16/burma-obama-visit-underscores-rights-challenges
46. http://www.hrw.org/news/2012/11/18/bridge-too-far-obama-crossed-too-early-myanmar; http://www.hrw.org/news/2012/10/26/burma-new-violence-arakan-state
47. http://www.unhcr.org/512756df9.html
48. http://www.hrw.org/news/2012/11/16/burma-obama-visit-underscores-rights-challenges
49. http://www.newyorker.com/online/blogs/evanosnos/2012/11/obamas-trip-to-burma-a-remarkable-journey.html
50. http://www.independent.co.uk/news/world/asia/aung-san-suu-kyi-has-abandoned-us-say-burmese-rebels-being-bombed-into-submission-8471734.html
51. http://www.guardian.co.uk/world/2013/jan/17/aung-san-suu-kyi-burma-kachin-ceasefire
52. http://www.dvb.no/news/kachin-rebels-refuse-to-invite-suu-kyi-to-mediate-peace-process/26397
53. http://www.ndtv.com/article/india/full-transcript-my-farewell-message-for-my-husband-was-too-late-says-aung-san-suu-kyi-to-ndtv-292831
54. http://www.unhcr.org/50ffe3c29.html
55. राजपक्षे के युद्ध अपराधों के प्रति अमेरिका को कितना कम ऐतराज था यह इस तथ्य से देखा जा सकता है कि उसने सरथ फोनसेका के अभियान का समर्थन किया जिसने युद्ध के दौरान अपने सिंहली अतिराष्ट्रवाद को प्रचारित किया. सेना से रिटायर होने के पश्चात, फोनसेका ने राजपक्षे को 2010 के राष्ट्रपति चुनाव में चुनौती दी; राजपक्षे ने उन्हें जेल भेज दिया, और दो साल बाद अमेरिका के आग्रह पर उन्हें रिहा किया।
56. http://www.gpo.gov/fdsys/pkg/CPRT-111SPRT53866/html/CPRT-111SPRT53866.htm
57. http://www.telegraphindia.com/1090519/jsp/frontpage/story_10988878.jsp
58. http://www.hindu.com/2009/01/29/stories/2009012959320400.htm
59. *द हिंदू*, 11/05/09।
60. http://articles.timesofindia.indiatimes.com/2011-07-20/chennai/29794493_1_state-hillary-clinton-asia-pacific-region-indian-parliament
61. "मोतियों की माला' का एक और मोती", पुर्वोद्धृत।